ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 01 मार्च 2026

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 01 मार्च 2026 से 07 मार्च 2026

फाल्गुन शु. 12 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 09, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रु. ● वार्षिक शु. 300/- रु.

डी.ए.वी. सेक्टर-49, गुरुग्राम में शत कुण्डीय हवन का आयोजन

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, उप्पल साऊथ एंड सेक्टर–49, गुरुग्राम में परीक्षा से पूर्व विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य और उत्कृष्ट परिणामों की मंगलकामना करते हुए शत–कुण्डीय हवन का आयोजन किया गया।

समारोह का शुभारंभ पवित्र हवन से हुआ। सौ प्रज्ज्वलित हवन कुण्डों की अग्नि मानो प्रत्येक विद्यार्थी के भीतर निहित संभावनाओं को आलोकित कर रही थी।

गणमान्य अतिथियों के रूप में डी.ए.वी., सी.एम.सी. के उपाध्यक्ष श्री प्रबोध महाजन जी एवं श्री योगेश मुंजाल जी व एल.एम.सी. के सदस्य डॉ. डी. वी. सेठी जी, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, सेक्टर–14, गुरुग्राम की प्रधानाचार्या श्रीमती अपर्णा ऐरी तथा अभिभावक शिक्षक संघ के सदस्य सम्मिलित थे।

श्री प्रबोध महाजन जी ने विद्यार्थियों को गायत्री मंत्र के नियमित जप का महत्त्व समझाया और जीवन में अनुशासन, संयम तथा सकारात्मक सोच को अपनाने का संदेश दिया। उन्होंने परीक्षा के समय संतुलित दिनचर्या, मोबाइल से दूरी और हल्के, शुद्ध आहार के महत्त्व पर भी विशेष बल दिया। श्री योगेश मुंजाल जी ने विद्यार्थियों को चुनौतियों का साहसपूर्वक सामना करने तथा अपने सभी प्रयासों में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित किया।

प्रधानाचार्या ने धन्यवाद प्रस्ताव प्रस्तुत किया तथा विद्यार्थियों को शांत, संतुलित और सजग रहकर अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देने के लिए प्रेरित किया। प्रत्येक कक्षा से तीन विद्यार्थियों को उनकी सत्यनिष्ठा, वैचारिक पवित्रता और पहल की भावना के लिए सम्मानित किया गया।

उपसभा पं. बंगाल ने मनाया ऋषि जन्मोत्सव एवं ऋषि बोधोत्सव

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पश्चिम बंगाल के तत्वावधान में 'महर्षि दयानंद जन्मोत्सव एवं ऋषि बोधोत्सव' का आयोजन प्रक्षेत्र के सभी विद्यालयों में तीन दिनों तक उत्साहपूर्वक किया गया। आर्यसमाज डीएवी मॉडल स्कूल, दुर्गापुर द्वारा इस शुभावसर पर विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया।

यज्ञ के पश्चात भजन, प्रवचन के माध्यम से महर्षि के कार्यों का उल्लेख किया गया। इसके पश्चात इच्छापुर में स्थित विवेकानंद विकास परिषद में रहकर पढने वाले आर्थिक रूप से कमज़ोर बच्चों के लिए 2 महीने का राशन जैसे दाल, डिटर्जेंट पावडर, जीरा, सूजी, हल्दी, छोला, नमक, मटर, बाथ ऑयल, चीनी, टूथपेस्ट, चावल, तेल, साबुन, मूडी, बिस्किट, पुस्तो एवं मिठाई का वितरण किया गया।

अन्य विद्यालयों में भी यह उत्सव यज्ञ, भजन, प्रवचन करके और आर्थिक रूप से कमज़ोर लोगों के साथ आवश्यक सामग्री भेंट करके मनाया गया।

डी.ए.वी. मेजिया द्वारा समीपस्थ जयसिंहपुर की गरीब बस्ती में कम्बल एवं मिठाई का वितरण किया गया।

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

डी.ए.वी. कोटा में 'हैप्पी क्लासरूम कार्यशाला'

डी.ए.वी. कोटा में हैप्पी क्लासरूम कार्यशाला विषय पर एक जीवंत क्षमता संवर्धन कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें अन्य विद्यालयों के लगभग 70 अध्यापक–अध्यापिकाओं ने भाग लिया। कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्ज्वलन एवं सहायक क्षेत्रीय अधिकारी श्रीमती सरिता रंजन गौतम के प्रेरक उद्बोधन से हुआ। इस कार्यक्रम का उद्देश्य कक्षा के वातावरण को खुशनुमा बनाना तथा विद्यार्थियों को प्रसन्नता के साथ अध्ययन के अवसर प्रदान करना है।

श्रीमती सुजाता ताथेड़, श्री अमित शर्मा एवं राजस्थान जोन–बी की सहायक क्षेत्रीय अधिकारी श्रीमती सरिता रंजन गौतम ने उपस्थित अध्यापक वर्ग का मार्गदर्शन किया। श्रीमती ताथेड़ एवं श्री अमित कुमार शर्मा ने बच्चों के साथ भावनात्मक विनियमन, खुशी सूचकांक, कहानी सुनाना तथा आनंदमय शिक्षण वातावरण बनाने पर केंद्रित गतिविधियों के क्रियान्वयन पर प्रकाश डाला तथा साथ ही मानसिक योग्यता, सामाजिक योग्यता,आत्म जागरूकता,समय प्रबंधन, व्यवहार और दुर्व्यवहार के कारण और निवारण पर विस्तृत चर्चा की।

सभी प्रतिभागियों ने विभिन्न विषयों से की जाने वाली गतिविधियों को आत्मसात् किया।

प्राचार्या महोदया ने कार्यक्रम को बहुत उपयोगी बताते हुए वक्ताओं का धन्यवाद ज्ञापित किया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 01 मार्च 2026 से 07 मार्च 2026

जंगम -स्थावर का राजा

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा, शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनाम्, अरान्न नेमिः परि ता बभूव।।

ऋग् 1.32.15

ऋषिः **हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः।** देवता **इन्द्रः।** छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**वज्रबाहु**) वज्रभुज (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**यातः**) चलने–फिरने वाले का, (**अवसितस्य**) निश्चल का (**शमस्य**) शांत का, (**शृङ्गिण च**) और तीक्ष्ण वृत्ति वाले का (**राजा**) राजा [है]। (सः इत्) वही (**चर्षणीनां**) मनुष्यों का (**राजा**) राजा [होकर] (**क्षयति**) निवास कर रहा है। (**अरान्**) अरों को (**नेमिः न**) परधि के समान [वह] (**ता**) उन्हें (**परि बभूव**) चारों ओर से व्याप्त किये हुए है।

● मैं अपने इन्द्र प्रभु का क्या वर्णन करुँ, कैसे उसकी महिमा का गान करूँ? उसकी महिमा के गीत गाने को जो जी चाहता है, पर वाणी में शब्द नहीं मिलते।फिर भी टूटे–फूटे शब्दों में ही सही, कुछ तो गुनगुना लूँ, कुछ तो अपने मन की साध पूरी की लूँ। मेरा प्रभु चलने फिरनेवाले जंगम अर्थात् चेतन जगत् और निश्चल होकर बैठ स्थावर अर्थात् जड़–जगत् दोनों का राजा है, दोनों पर उसका अधिपत्य है। वह पशु, पक्षी,सरीसृप, मानव आकद तथा वन, पर्वत, नदी, सागर, सूर्य, चन्द्र आदि सबका अधिष्ठाता और व्यवस्थापक है। उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता तक नहीं हिल सकता। वह शान्त–जीवन व्यतीत करने वाले, तप–साधन में निरत रहने वाले शान्तवृत्ति ऋषि–मुनियों का भी राजा है और तीक्ष्णश्रृंग अर्थात् तीक्ष्ण साधनों का अवलम्बन करने वाले तीक्ष्णवृत्ति रजोगुणियों का भी राजा है, नियन्त्रधकर्ता है। वह वज्रबाहु है, भुजा में वज्र धारण किये है और उच्छृङ्खलों को उनके उच्छृङ्खल कर्मों के अनुसार यथायोग्य दण्ड दे रहा है। कोई उसकी दण्ड–व्यवस्था से कितना ही बचना चाहे, बच नही सकता। वही हम सब 'चर्षणियों' का कृषिकर्ता मानवों का भी राजा होकर निवास कर रहा है, चाहे हम अपनी मनोभूमि का कर्षण करके उसमें सद्गुणों का बीज वपन कर आन्तरिक सम्पदा को लहलहाते हों, चाहे हल चलाकर, उत्तम बीज बोकर भूमि को सस्यश्यामला बनाते हों।

जैसे रथ–चक्र की नेमि समस्त घरों को चारों ओर से व्यापत किये होती है और अपने में थामे होती है, वैसे ही जगत् का राजा वह इन्द्रदेव जगत् की वस्तुओं के चारों ओर व्याप्त होकर उन्हें सहारा दिये हुए है, तभी संसार के सब पदार्थ पृथक्–पृथक् इकाई होते हुए भी परस्पर सामंजस्य रखेहुए हैं और विश्व के चक्र को चला रहे हैं। अन्यथा उनकी स्थिति वैसी ही हो जाए, जैसी नेमि के टूट जाने पर रथ–चक्र के घरों की होती है, तब विश्वचक्र –प्रवर्तन ही समाप्त हो जाए।

आओ, हम एक स्वर से अपने उस राजराजेश्वर इन्द्र प्रभू के चरण–चंचरीक बनकर उसकी महिमा का गुंजार करें।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

प्रभु भक्ति पुस्तक में स्वामी जी मोक्ष प्राप्ति के मार्गों का दिव्य दर्शन करा रहे हैं। नाड़ी की शुद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के प्राणायाम बताए हैं। रेचक, कुम्भक पूरक के द्वारा छोटी तथा अति सूक्ष्म नाडियों का भी शोधन हो जाता है। मन की शुद्धि के लिए भोजन का शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। भोजन शुद्ध व पवित्र कमाई का हो। मन शुद्ध संकल्प वाला हो। प्रभु से मिलन के लिए 'ब्रह्मचर्य' प्रभु मन्दिर की नींव है। अन्न से बनने वाले तत्वों (पदार्थों) का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। भगवान के मन्दिर में मूलतत्वों के गिरने से पुजारी (आत्मा) का सर्वनाश हो जाता है इसलिए पूरे यत्न से हम प्रभु–मन्दिर (शरीर) की रक्षा करनी चाहिए जिससे केवल्य प्राप्त किया जा सके...।

.... अब आगे

"जो मनुष्य सत्य, प्रेम, भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन्हीं उपासकों को परम कृपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष–सुख देकर सदा के लिए आनन्दयुक्त कर देगा।"– दयानन्द

'सत्यार्थप्रकाश' के सातवें समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं– "जो उपासना आरम्भ करना चाहे, उसके लिए यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो।"

यह तो हुई उपासना की तैयारी; परन्तु उपासना किस प्रकार करनी चाहिए – इसका वर्णन महर्षि इस प्रकार करते हैं–

"जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि प्रदेश में, हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर, अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे। जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान–विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी–भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।"

यजुर्वेद के एकादश अध्याय के पाँचवें मन्त्र का भावार्थ लिखते हुए स्वामी दयानन्द जी ने यह बतलाया है कि–

"योगाभ्यास के ज्ञान को चाहनेवाले मनुष्यों को चाहिए कि योग में कुशल विद्वानों का संग करें, उनके संग से योग की विधि को जान के ब्रह्म–ज्ञान का अभ्यास करें। जैसे विद्वान् का प्रकाशित किया हुआ मार्ग सबको सुख से प्राप्त होता है वैसे ही योगाभ्यासियों के संग से योग–विधि सहज में प्राप्त होती है। कोई भी जीव संग और ब्रह्मज्ञान के अभ्यास के बिना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता। अतः योग–विधि के साथ ही सब मनुष्य परब्रह्म की उपासना करें।"

तात्पर्य यह है कि योग विधि के बिना उपासना अथवा भक्ति नहीं हो सकती और न ही ब्रह्म–ज्ञान प्राप्त हो सकता है। योगविधि क्या है ? यह योगदर्शन में बताया गया है।

{योग के आठ अंग बताए गए हैं– 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि।

यम–1. अहिंसा, 2. सत्य, 3. अस्तेय (चोरी न करना), 4. ब्रह्मचर्य, 5. अपरिग्रह (भोग–साधनों को इकट्ठा करने का लोभ न करना)।

नियम – 1. शौच, 2. सन्तोष, 3. तप, 4. स्वाध्याय, 5. ईश्वरप्रणिधान (सब काम ईश्वरार्पण)

आसन–सिद्ध, पद्म, सुख–आसन आदि।

प्राणायाम –बाह्य, आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तराक्षेपी।

प्रत्याहार–इन्द्रियों को निर्विषय धारण करना।

धारणा–मन का मस्तकादि प्रदेश में ईश्वर के चिन्तन में बँध जाना।

ध्यान–धारणा का ईश्वर के आनन्द में लगातार बने रहना।

समाधि–ध्यान करने वाले, ध्यान व भगवान् का एक हो जाना। भक्त,

भक्ति और भगवान् का फिर कोई भेद नहीं रहता।}

यदि कोई भक्त यह समझे बैठा है कि यम–नियमों का पालन किये बिना और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान को प्रयोग में लाए बिना ही वह प्रभु–दर्शन कर लेगा, तो वह भूलता है। थोड़ा–बहुत जितना भी हो सके, इन साधनों की भट्टियों में से भक्त या उपासक को गुज़रना ही पड़ता है। महर्षि दयानन्द 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' में लिखते हैं–

"यह उपासना–योग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कर्मों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े या सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।"

जब तक मन यम–नियमों की मंज़िलें तय नहीं करता तब तक भक्ति का अधिकार ही प्राप्त नहीं होता। मन की वृत्ति इस प्रकार की हो जानी चाहिए कि उसमें हिंसा के भाव न आएँ, वह चोरी का चिन्तन भी न करने पाए, सत्य और ब्रह्मचर्य पर आरूढ़ रहे, लोभ में न फँसे और शौच, सन्तोष तथा तप से अपनी वृत्ति भक्तों की–सी बना ले। ऐसी वृत्ति बनाने में ईश्वर पर पूर्ण भरोसा, उसी की इच्छा पर रहने का स्वभाव डालना और वेद, उपनिषद्, गीता आदि का स्वाध्याय बहुत सहायक होते हैं।

इसके पश्चात् आसन की बारी आती है। कितने ही आसन तो केवल शरीर–रक्षा के लिए हैं और कुछ मन को एकाग्र करने के निमित्त। पद्मासन और सिद्धासन विशेष रूप से प्रयोग में आते हैं। **परन्तु आप चाहें किसी भी आसन में बैठें, सुख से बैठें और वह आसन ऐसा हो जिसमें आप बिना थकान के कम–से–कम साढ़े तीन घण्टे बैठ सकें।** कोई एक आसन ग्रहण कर लीजिये और उसी में शरीर को बिना हिलाये कम–से–कम साढ़े तीन घण्टे –प्रतिदिन बैठने का अभ्यास कर लीजिये। मन को स्थिर करने से पूर्व शरीर को काबू करने की आवयकता है। जिसका शरीर ही वश में नहीं, उसका मन कदापि काबू में नहीं होगा। एक ही आसन में निरन्तर साढ़े तीन घण्टे निश्चल बैठने के अभ्यास के साथ प्राणायाम का भी अभ्यास करना चाहिए। महर्षि ने 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' के उपासना **{श्री महात्मा नारायण स्वामी का 'योग रहस्य' देखिये}** विषय में लिखा है–"जैसे भोजन के पीछे किसी प्रकार से वमन हो जाता है, वैसे ही भीतर वायु को बाहर निकाल के सुखपूर्वक जितना हो सके उतना बाहर ही रोक दें। पुनः धीरे–धीरे भीतर लेकर पुनरपि ऐसे ही करें। इसी प्रकार बारम्बार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है। इन तीनों के स्थिर होने के समय अपने आत्मा के बीच में जो आनन्दस्वरूप अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिए। जैसे मनुष्य जल में गोता मारकर ऊपर आता है, फिर गोता लगाया जाता है, इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में बारम्बार मग्न करना चाहिए।

शरीर आसन से स्थिर हो गया, प्राण प्राणायाम से स्थिर हो गया, तो फिर मन का स्थिर हो जाना स्वाभाविक हो जाता है क्योंकि प्राण के साथ ही मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्राणायाम–प्राणायाम आरम्भ करने से पहले दोनों नासिकाओं को स्नान कराना आवश्यक है। नासिका–स्नान की विधि यह है कि हाथ पर या लोटे में जल लेकर नासिकाओं में श्वास द्वारा ऊपर खींचना चाहिए और फिर जल नीचे फेंक देना चाहिए। इस प्रकार पाँच–छः बार कर लेने से नासिकाएँ स्वच्छ हो जायेंगी और बलगम कम हो जायेगा। प्राणायाम भी तभी भली–भाँति हो सकेगा।

आसन में बैठकर कमर और गर्दन सीधी रखनी चाहिए। बहुत अधिक तनकर भी नहीं बैठना चाहिए। पहले बायें स्वर से श्वास ऊपर खींचकर दायें स्वर से छोड़ देना चाहिए। तब दायें से ऊपर खींचकर बायें से छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार सात–आठ बार करने के पश्चात् दोनों स्वरों से प्राण अन्दर ले जाइये और नाभि तक अच्छी तरह भर लीजिये और आसानी के साथ जितना रोका जा सकता है रोकिये। तब एकाएक ऐसे, जैसे वमन किया जाता है, नासिकाओं द्वारा ही प्राण को बाहर फेंक दीजिये और पेट वायु से सर्वथा खाली कर दीजिये। पेट वायु से खाली करते समय नाभि को ऊपर की ओर खींचना चाहिए। प्राण बाहर फेंककर फिर इन्हें बाहर ही रोके रहिये। जब मन घबराने लगे तो धीरे–धीरे प्राण अन्दर भर लीजिये। प्राणायाम का सबसे सुगम तरीका यही है। इसी में बाह्य, आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तराक्षेपी प्राणायाम हो जाते हैं। यह प्राणायाम बिना किसी से सीखे भी किया जा सकता है। इससे आगे फिर किसी सच्चे वीतराग गुरु की शरण लेनी आवश्यक है।

प्राणायाम से जब प्राण स्थिर होने लगता है और प्राण के साथ मन भी चंचलता छोड़ने लगता है तो इन्द्रियाँ स्वयं ही काबू में आ जाती हैं। इसी को प्रत्याहार कहते हैं।

अब धारणा और ध्यान की बारी आती है। धारणा के लिए हृदय में अथवा भ्रू–मध्य में मन को स्थिर कीजिये और इसका सुगम उपाय यह है कि हृदय अथवा भृकुटि में मन ही से ओम् के अर्थ का चिन्तना कीजिये और इसी का मानसिक जप कीजिये, जिसमें न जिह्वा हिले, न कण्ठ, केवल मन ही से जाप हो।

जब यह अवस्था प्राप्त हो जाये तो समझिये कि ध्यान लगने लगा है। ऐसी अवस्था में एक ऐसा आनन्द प्राप्त होगा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आपका मन यही चाहेगा कि घण्टों इसी अवस्था में बैठे रहें। जब आप दूसरे सांसारिक काम करेंगे तब भी अन्दर से यही प्रेरणा होगी कि चलो अब प्रिय–दर्शन करें। तब आपकी आँखें सजल हो उठेंगी और आपके मुख से अकस्मात् निकल पड़ेगा–

जी चाहता है फिर वही फुरसत के रात–दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे–जानाँ किये हुए।

इससे आगे की अवस्था का वर्णन कुछ असम्भव–सा है; उसे समाधि कहते हैं। भक्त शिरोमणि योगिराज भगवान् दयानन्द ने इस अवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया है–

"जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि–रूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करनेवाला, जिसके द्वारा ध्यान हो रहा है, जिसका ध्यान हो रहा है, वे तीनों विद्यमान रहते हैं; परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द–स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है; वहाँ तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर रुका रहता है, वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होके फिर बाहर को आ जाता है।"

इसी अवस्था को प्राप्त कर लेनेवाले के लिए तो ईशोपनिषद् में यह कहा गया है–

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

'जहाँ (पहुँचकर) सब भूत आत्मा ही हो गया, वहाँ एकता को देखते हुए विज्ञानी को क्या शोक है ? और वहाँ पर शोक और मोह रह ही कैसे सकते हैं, जहाँ सर्वत्र आनन्द–ही–आनन्द का स्रोत बह रहा हो !' वहाँ तो सारे झंझट समाप्त हो जाते हैं, हर ओर आनन्द–ही–आनन्द दिखाई देता है। दुई जाती रहती है। अब एक ही आनन्दघन रह जाता है। अथर्ववेद के दूसरे काण्ड के पहले सूक्त का पहला ही मन्त्र है–

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र
विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानः
स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः।।

'विद्वान् उस परमात्मा को गुहा (हृदय की गुफा) में देखता है, जहाँ विश्व एकरूप हो जाता है। यह पृथिवी भी व्यवहार के अयोग्य हो जाती है। तत्त्वज्ञानी बाकी जगत् को भी व्यवहार में आने के अयोग्य समझता है। अर्थात् जिस समय भक्त प्रभु–चिन्तन में हृदयस्थ होकर मग्न हो जाता है, तब उसके लिए समस्त जगत् एकरूप प्रतीत होता है और यह सब–कुछ व्यर्थ–सा प्रतीत होने लगता है। प्रभु–चिन्तन में वह इतना लवलीन हो जाता है कि इनकी ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। केवल आनन्दघन ही उसके सामने रह जाता है।

श्वेताश्वतर–उपनिषद् की तो यही पुकार उठी है–

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

'जब वह युक्त होकर आत्म–तत्त्व के दीपक से उस ब्रह्मतत्त्व को देख लेता है, जो अजन्मा, अटल और सारे तत्त्वों से शुद्ध, निखरा हुआ है, तब वह उस देव को जानकर सारी फाँसों से छूट जाता है।'

लेकिन यह स्मरण रखिये कि जितनी शीघ्रता से ये बातें कह दी गई हैं, उतनी शीघ्रता से होती नहीं। इसमें बहुत लम्बा समय लग जाता है। इसलिए पूर्ण श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम से इन पर आचरण करना होगा। आलस्य को त्यागकर निम्न आचरण कीजिये–

1. रात को यदि तीन बजे उठ सकें तो अच्छा है, अन्यथा चार बजे अवश्य उठ जाइये और एक घण्टा ओम् अथवा गायत्री का जाप कीजिये। स्वामी जी के जीवन–चरित्र में लिखा है कि कलकत्ते में एक बार पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने स्वामी जी से पूछा–'ईश्वर से मिलने का क्या उपाय है ?' स्वामी जी ने कहा–'बहुत दिन तक योग करने से ईश्वर की उपलब्धि होती है।' तब उन्होंने पूछा–'वह योग कैसा है ?'– उत्तर में स्वामी जी ने अष्टांग योग की व्याख्या

शेष पृष्ठ 04 पर ☞

प्राणदाता उषा तथा सविता

● डॉ. रघुवीर वेदालंकार

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनी।
पुराणी देवी युवतिः पुरन्धिरनुव्रतं चरसि विश्ववारे।। ऋ. 3.61.1

उषा की वेदों में बहुत महिमा गायी गयी है। यह सूर्योदय से पहला समय है। इसे ब्राह्म मुहूर्त भी कह सकते हैं। उषा के पश्चात् सविता का समय है। विभिन्न समय एवं अवस्थाओं के अनुसार सूर्य के कई नाम हैं। प्रातः कालीन उगता हुआ सूर्य ही सविता संज्ञक है। अभी इसमें किरणें नहीं फूटी हैं। किरणों के साथ–साथ आकाश में गति करते हुए इसकी संज्ञा सूर्य हो जायेगी। सविता का समय इससे पूर्ववर्ती है। सविता से भी पूर्ववर्ती समय उषा का है। उषा एवं सविता दोनों ही शक्ति–बुद्धि, तेज, ओज तथा दीर्घायु प्रदाता हैं। उषा सूक्त (ऋ. 3.61) में कहा गया है–

उषो वाजेन वाजिनि–हे उषा। तुम वाज के साथ वाजिनी हो। वाज क्या है ? शक्ति तथा गति का नाम ही वाज है। घोड़े को भी शक्ति के आधार पर वाजी कहा जाता है। आयुर्वेद में शक्ति शालिनी ओषधियों को वाजीकरण कहा जाता है। शक्ति के कारण ही इंजनों की शक्ति का अनुमान **H.P.HO** से लगाया जाता है। वज् धातु गति के अर्थ में भी पठित है। अतः वाजिनी का अर्थ गतिमती हुआ। इस प्रकार उषा शक्ति तथा गति इन दोनों गुणों में युक्त होने के कारण वाजिनी है। गति तथा शक्ति परस्पर सम्बद्ध ही हैं। शक्तिशाली में ही गति होती है। शक्तिहीन गतिहीन होता है। गति के कारण ही घोड़े का एक नाम अश्व भी है। इसका अर्थ है कि घोड़ा शीघ्रगामी है। वह शक्तिशाली भी है। इस प्रकार उषा भी गतिमती तथा शक्तिशालिनी देवी है। देवी का अर्थ दिव्य शक्तियों तथा दिव्य गुणों का प्रदान करने वाला है। इसलिए इसे युवति भी कहा गया है। यह शब्द 'यु' धातु से बना है। इसका अर्थ मिश्रण तथा अमिप्रण है। उषा दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है तथा रोगाणुओं को दूर भगाती है (अमिश्रण)। इसीलिए वह युवति है।

प्रचेतः – यह उषा का दूसरा विशेषण है। प्र+चेता। प्रकृष्ट ज्ञान वाली। उषा केई मूर्तिमती देवी नहीं है, जिसके लिए यह कहा जा रहा हो। उषा एक समय विशेष का नाम है। सविता से पूर्ववर्ती यह समय होता है। इस समय में गति, शक्ति तथा उत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करने की अद्भुत क्षमता है। प्रातःकाल का स्मरण किया हुआ स्थायी होता है, स्मरण भी शीघ्र होता है, क्योंकि इस समय बुद्धि निर्मल एवं शान्त रहती है जबकि दिन में वह अशान्त व्याकुल हो जाती है। ईश्वर के ध्यान–चिन्तन प्राणायाम आदि के लिए भी यही समय उपयुक्त है। उषा सविता के आगमन से पहली अवस्था है। इसके पश्चात् सविता का समय है। उदय होते हुए सूर्य की किरणें जब तक आकाश में नहीं फैलतीं, यही सविता का समय है। लाल गोले के रूप में उगते हुए सूर्य में अभी किरणों का निकलना प्रारम्भ ही हुआ है। उसकी ये किरणें भी अतीव शक्तिशालिनी हैं। वेद कहता हैं–

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुयाजसो ये। (ऋ. 3.61.2)

हे उषा। तुम्हे सुवर्ण के रंग वाले तथा अति शक्तिशाली अश्व धारण करें। यहाँ अश्व का अर्थ घोड़ा नहीं है, अपितु आकाश में फैलने वाली सविता की प्रारम्भिक किरणें ही हैं। यहाँ **'अशूङ् व्याप्तौ'** धातु है। आकाश को व्याप्त करने के कारण ही इन किरणों की अश्व संज्ञा है। ये पृथुयाजस हैं। अर्थात् अत्यधिक शक्तिवाली। याजस् का अर्थ शक्ति है। उषा इन्ही अश्वों पर आरूढ़ रहती है।

वेद कहता है कि सविता की ये किरणें मृत्यु के पाशों को भी नष्ट कर देती है–**उद्यन् सूर्यो नुदता मृत्युपाशान्।** (अ.7.1.30)

उदय होता हुआ सूर्य (सविता) मृत्यु के पाशों को नष्ट कर दे। मृत्यु के पाश क्या हैं ? शारीरिक रोग तथा चिन्ता, राग–द्वेष आदि मानसिक रोग। इनके कारण ही व्यक्ति धीरे–धीरे मृत्यु की ओर चलता जाता है। शारीरिक रोगों का प्रमुख कारण कीटाणु हैं। सविता की किरणें इन रोगाणुओं को पूर्णतः नष्ट कर देती हैं। वेद कहता है–**उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तुं निम्लोचन हन्तुं रश्मिभिः।** (अ. 2.32.1)

अर्थात् उदित होता हुआ सूर्य (सविता) तथा अस्तंगत सूर्य अपनी किरणों से रोग के कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं। यही सविता मेधा – शुद्ध बुद्धि का भी जनक है– **मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वर्चसा वेशयामहि।** (अ.6.108)

वर्चस् = तेज के साथ हम सूर्य की रश्मियों से मेधा बुद्धि को धारण करें। सविता को हिरण्यपाणि कहा गया है। हिरण्य अर्थात् सुवर्ण पीला चमकीला होता है। उदय होते हुए सूर्य की किरणें लाल रंग की होती हैं। यही सविता का समय है। सविता की इन किरणों में रोगनाशक शक्ति होती है। वेद कहता है–

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे
द्यावा पृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि
कृष्णेन रजसा द्यामृणोति।।
(ऋ. 1.135.101)

यह सुवर्ण जैसी किरणों वाला सविता रोगाणुओं को दूर करता है।

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृलीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानान् अस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः।। (ऋ. 1.135.10)

यहाँ सविता को असुर कहा गया है। यहाँ असुर का अर्थ राक्षस नहीं है, अपितु **असून् राति ददातीति असुरः।** असु प्राणों को कहते हैं। सविता की किरणें प्राणों की पोषक हैं। इसलिए सविता असुर है। प्राणों पर ही व्यक्ति का जीवन निर्भर है। रोग के कृमियों को मन्त्र के **रक्षस्** तथा **यातुधान** कहा गया है। सविता की किरणें इन सभी को नष्ट करती हैं इसीलिए यहाँ सविता का विशेषण सुमृडीक अर्थात् उत्तम सुखदाता दिया गया है। एक अन्य मन्त्र में सविता को दुरितों का नाशक कहा गया है।

अप विश्वा दुरिता बाधमानः।
(ऋ 1.35.3)

ये दुरित वे ही हैं जिन्हें दूर करने की प्रार्थना सविता से इस प्रकार की है

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
(यजु. 30.3)

हे सविता देवी आप हमारे समस्त दुरितों को दूर कर दीजिए। परमेश्वर को भी सविता कहते हैं। वह भी दुरित विनाशक है।

वेद यह भी कहता है कि यदि कोई व्यक्ति उदित होते हुए सूर्य के समय सोया रहता है तो सविता उसके तेज को हर लेता है।

उद्यन् सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आददे।
(अथर्व. 71.3.2)

जिस प्रकार सविता प्राणपोषक, आयुवर्धक तथा रोगों के कृमियों का नाशक है, उसी प्रकार उषा भी इन गुणों वाली है। उषा को भी **अमृतस्य केतुः** कहा गया है। दीर्घजीवन को भी अमृत कहते हैं। व्यक्ति के 75 वर्ष का होने पर अमृत महोत्सव इसी दृष्टि से मनाया जाता है। सविता तथा उषा का साहचर्य है दोनों लगभग समान धर्मा हैं। उषा के तुरन्त पश्चात् ही सविता का समय है। इसके बाद वह सूर्य बन जाता है।

वर्तमान जीवन में उषा तथा सविता को हमने छोड़ दिया। देर रात तक कार्य करना तथा प्रातः देर से ही उठना हमारा स्वभाव बन गया है। नगरों मे ऊँचे–ऊँचे मकान बन गये है। जहाँ सूर्य की किरणें जाती ही नहीं हैं। इसलिए वर्तमान काल में रोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है। नये–नये रोग जन्म ले रहें हैं। पहले समय में ऐसा नहीं था। अधिकतर जनता उषाकाल में उठ जाती थी। घरों में उदित होते हुए सूर्य की किरणे आती थी। इसीलिए न इतने रोग थे तथा न ही इतने डॉक्टर तथा चिकित्सालय थे। पुनरपि व्यक्ति स्वस्थ रहते थे।

बी–266, सरस्वती विहार,
दिल्ली–110034

☞ पृष्ठ 03 का शेष

प्रभु-भक्ति

करके सुनाई और उपदेश दिया कि 'तीन घड़ी रात रहे उठकर गायत्री का अर्थ सहित ध्यान किया करो।' जो भी लोग स्वामी जी के साथ रहते थे, उन्हें वे सदा प्रातःकाल उठने का उपदेश देते थे।

2. पाँच बजे स्नान से निवृत्त होकर प्राणायाम कीजिये। पहले एक–एक नासिका से, फिर दोनों नासिकाओं से बाह्य, आभ्यन्तर और बाह्याभ्यन्तराक्षेपी प्राणायाम कीजिये। इसके पश्चात् भस्त्रा प्राणायाम करें और तब शान्त होकर भृकुटि अथवा हृदय में ध्यान लगायें। इसका विधि पहले लिखी जा चुकी है।

3. ध्यान के समय ओम् का जाप भी करते रहें।

4. तब सन्ध्या–हवनादि करें।

5. दोपहर को या दिन में जब भी कोई समय मिले तो गायत्री मन्त्र और ओम् का जाप कर लिया करें।

6. गायत्री मन्त्र तथा ओम् का मन्त्र इन दो ही के जपने का विधान वेद में है। महर्षि दयानन्द ने भी इनका ही आदेश दिया है।

यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 54 में गायत्री मन्त्र के उपांशु जाप से हर प्रकार के सुख की प्राप्ति का वर्णन है और यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय में परमात्मा ने ओम् जपने की आज्ञा दी है। अनुभव यह बतलाता है कि दोनों के एक–साथ जपने से लोक–परलोक दोनों सुधरते हैं और मन तथा बुद्धि की एकाग्रता प्राप्त होती है। गायत्री का जाप प्रातः पूर्व की ओर मुख करके करना चाहिए।

क्रमशः

आर्यसमाज और देश की राजनीति

● इन्द्र विद्यावाचस्पति

आर्यसमाज के इतिहास की जिस सीमा पर हम पहुँचे गये हैं वहाँ खड़े होकर यह देखना आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस क्षेत्र में आर्यसमाज अपना कार्य कर रहा था उसमें अन्य कौन–सी शक्तियाँ देशवासियों को प्रभावित कर रही थीं। हमें यह भी देखना होगा कि उन शक्तियों का तथा आर्यसमाज का क्रिया–प्रतिक्रिया के सिद्धान्त के अनुसार एक–दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ रहा था?

जिस समय स्वामी दयानन्द जी सत्य की खोज में जंगलों और पहाड़ों में घूम रहे थे उस समय भारत की रंगस्थली पर एक रक्तपूर्ण क्रान्ति का अभिनय हो रहा था। स्वामी जी 1860 ई. में मथुरा पहुँचकर दंडी विरजानन्द के विद्यार्थी बने। उससे पूर्व का समय उन्होंने देश के भिन्न–भिन्न प्रदेश में सत्य ज्ञान की तलाश में घूम कर बिताया। 30 मई सन् 1857 ई. के दिन मेरठ में उस क्रान्ति का सूत्रपात हुआ जो शीघ्र ही देश के बड़े भागों में फैल गई। प्रजा का शायद ही कोई भाग ऐसा रहा हो जो उससे अछूता रहा हो। जिन दिनों में और देश के जिस भाग में क्रान्ति की ज्वाला जाज्वल्यमान थी उन्हीं दिनों देश के लगभग उसी भाग में स्वामी दयानन्द सरस्वती जिज्ञासु बन कर घूम रहे थे। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि उस महान् विद्रोह में जो रोमांचकारी घटनायें घटित हुई, उन्हें स्वामी जी ने आँखों से देखा और अनुभव किया होगा। यह कहना तो कठिन है कि स्वामी जी ने स्वयं उस राज्य क्रान्ति में कोई भाग लिया या नहीं और लिया तो किस रूप में, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका हृदय क्रान्ति की घटनाओं से प्रभावित अवश्य हुआ होगा।

{इसमें तो कोई शङ्का हो ही नहीं सकती कि क्रान्ति की घटनाओं को प्रत्यक्ष में ऋषि ने देखा उसका उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। जालंधर पंजाब में ऋषि ने अपने एक व्याख्यान में उसे बलवा (विप्लव) कहकर गोरों द्वारा लखनऊ में किये गये अत्याचारों की घोर निन्दा की। 'जिज्ञासु'}

स्वामी जी के ग्रन्थों में देशवासियों की दीन–हीन दशा के सम्बन्ध में जो गहरी व्यथा प्रकट होती है, उसमें तो क्रान्ति की प्रत्यक्ष देखी हुई घटनाओं की प्रतिछवि दिखाई देती है। महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में निम्नखिलित वाक्य लिखे थेः–

"कोई कितना ही कहे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह से रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशी राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।"
दूसरे स्थान पर आपने लिखा हैः–

"जब से विदेशी इस देश में आकर राज्याधिकारी हुए तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।"

इन तथा अन्य ऐसे ही स्थलों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि महर्षि ने स्वयं अपनी आँखों से उन यातनाओं को देखा था जो 1857 और 58 में माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया की घोषण ा करने वाले विदेशी राज्य की ओर से भारतवासियों पर डाली गईं।

अभी अंग्रेज़ी पढ़े–लिखे भारतवासी सरकारी नौकरियों और ओहदों को स्वराज्य, स्वधर्म और स्वदेशी के आदर्श मान रहे थे। महर्षि के लिए राजनीति भी धर्म के लिए एक आवश्यक अंग था। सन् 1857 और सन् 1885 के मध्यवर्ती समय में भारत में जो सामाजिक और राजनीतिक जागृति पैदा हुई, उस पर महर्षि के मौखिक और लिखित उपदेशों का न्यूनाधिक प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

सौ से भी कम प्रतिनिधि :– वह देश में जागृति का काल था। भारतवासी उस पीड़ा को अनुभव करने लगे थे जो दासता की जंज़ीरों से उत्पन्न होती है। देश के अनेक प्रान्तों में सामाजिक और राजनीतिक जागृति ने स्थूल रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि स्थान–स्थान पर अपनी मांगों को प्रकट करने के लिए सभा–समितियाँ स्थापित होने लगीं। सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। यद्यपि बम्बई में होने वाले पहले अधिवेशन में **सौ से भी कम अंग्रेज़ी पढ़े–लिखे प्रतिनिधि एकत्र हुए थे** परन्तु देशवासियों का असन्तोष इतना बढ़ चुका था कि दूसरे वर्ष तक वह संख्या कई गुना हो आई। कांग्रेस की राजनीति अभिलाषाओं का केन्द्र बनी।

जब कांग्रेस की चर्चा उत्तर में पहुँची तब स्वाभाविक ही था कि आर्यसमाज के बहुत–से सभासद् उस ओर आकृष्ट होते। कांग्रेस का चौथा अधिवेशन 1888 में प्रयाग में हुआ। उसमें पंजाब से कई प्रतिनिधि शामिल हुए। उनमें से प्रमुख नाम लाला लाजपतराय का है। लाला जी लाहौर में जाने से पहले हिसार में वकालत करते थे। वहीं से उनको आर्यसमाज के साथ–साथ राजनीति के कार्य की ओर भी रुचि हो गई थी। आप हिसार के सार्वजनिक जीवन में बहुत अधिक भाग लेते थे। **आप म्युनिसिपैलिटी के चुनाव में निर्विरोध निर्वाचित हुए जहाँ आपकी अंग्रेज़ी अफसर से प्रायः झड़प रहती थी। लाला जी ने उन्हीं दिनों इटली के प्रसिद्ध देशभक्त मेजिनी का जीवनचरित्र उर्दू में लिखा था।** उर्दू के पत्रों में राजनीतिक विषयों पर लिखने के अतिरिक्त लाला जी प्रान्त के अन्य नगरों की राजनीति में भी भाग लेते रहते थे। अंग्रेज़ी अफसर उसी समय से आपके राजनैतिक कार्यों को घबराहट की दृष्टि से देखते और आपसे डरने लगे थे। कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए प्रयाग पहुँचने पर वहाँ कांग्रेसी नेताओं की ओर से लाला जी का भव्य स्वागत हुआ। आप और आपके मित्रों के प्रयाग पहुँचने से कांग्रेस के अधिकारियों को यह आशा हो गई कि पंजाब राजनीतिक आन्दोलन में किसी प्रान्त से पीछे न रहेगा।

अंग्रेज़ों को समाज अखरने लगा :– 1893 ई. में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसकी स्वागताधिकारिण ी सभा में लाला जी के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से प्रमुख आर्यसमाजियों ने भाग लिया। उस समय तक कांग्रेस कोई राजद्रोही संस्था नहीं मानी जाती थी। वह ऐसे देशभक्तों की संस्था थी जो सरकारी नौकरियों, धारा–सभा की सदस्यता या हाईकोर्ट के जजों से ऊपर की कोई चीज़ नहीं माँगते थे। **इस कारण बहुत से ऊँचे सरकारी नौकर भी कांग्रेस की बैठकों में शामिल हो जाते थे।** परन्तु बात यह थी कि उस समय के अंग्रेज़ हलके से उसके राजनीतिक आन्दोलन को भी नापसन्द करते थे और उस पर राजद्रोह का लेबल लगाने को तैयार रहते थे। फलतः कुछ आर्यसमाजियों का कांग्रेस में सम्मिलित होना अनेक सरकारी अफसरों को बहुत अखरा। **उन्होंने अपने विचारों को खुफिया सरकारी रिपोर्टों में प्रकाशित भी किया।**

ईसाई सरकार को उकसाने लगे :– सबसे पहले जिन लोगों ने आर्यसमाज पर राजद्रोही होने का आरोप लगाया वे ईसाई पादरी थे। उस समय की सरकारी खुफिया फाइलों को देखने से प्रतीत होता है कि जब आर्यसमाज के प्रचार के कारण ईसाइयों के प्रचार कार्य में बाधा पड़ने लगी तब उन्होंने झुंझला कर सरकार के कान भरने आरम्भ कर दिये। अंग्रेज़ी सरकार को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़काने का सबसे बढ़िया उपाय यह था कि आर्यसमाज को एक राजद्रोही संस्था सिद्ध किया जाये। सत्यार्थप्रकाश के स्वराज्य और स्वदेशी सम्बन्धी उद्धरणों को हवाला देकर उन्होंने अधिकारियों को यह समझाने का यत्न किया कि स्वामी दयानन्द अंग्रेज़ी सरकार का विरोधी था और उसके अनुयायी राजद्रोही हैं।

सब विरोधियों का यही हथकण्डा – आर्यसमाज के विरुद्ध इसी हथकंडे को बर्त्तने का कई अन्य मतानुयायियों ने भी यत्न किया। 1902 में सनातन धर्म के आलाराम नाम के एक संन्यासी ने एक ट्रैक्ट में यह लिखा था कि आर्यसमाज राजद्रोही संस्था है। इस पर आलाराम पर अभियोग चलाया गया। अभियोग में आलाराम अपराधी सिद्ध हुआ। फैसला देते हुए इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर पी. हैरिसन ने यह स्पष्ट शब्दों में स्वीकारा था कि "दयानन्द के उपदेशों का उद्देश्य लोगों को सुधार के लिए प्रेरित करना है ताकि वे इस योग्य हो सकें कि वे किसी दिन अपने देश का राज्य संभाल सकें....उनमें न तो हथियार उठाने का आदेश है और न युद्ध की घोषणा।"

स्वदेश भक्ति को किसी देश और किसी समय में भी अपराध नहीं माना गया। विदेशी राज्य की यह **विशेषता है कि उसमें अपनी मातृभूमि के प्रति भक्ति जैसे पवित्र भाव को भी अपराध माना जाता है।** यही कारण है कि अंग्रेजी राज्य के अन्त तक भी सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज को आवश्यकतानुसार राजद्रोही बतलाया जाता रहा।

महर्षि दयानन्द स्वयं भारत भक्त थे। उनके ग्रन्थों में देश–भक्ति कूट–कूट कर भरी हुई है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि उनके अनुयायी देशसेवा के प्रत्येक कार्य में आगे रहते। ज्यों–ज्यों भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन ऊँचा उठता गया त्यों–त्यों आर्य नर–नारियों का उसमें सहयोग भी बढ़ता गया।

मैंने ऊपर लिखा है कि लाला लाजपतराय जी के अतिरिक्त अन्य भी बहुत–से आर्यसमाजी कांग्रेस में भाग लेने लगे थे परन्तु इसका यह अभिप्राय न समझना चाहिए कि उस समय (1885–1900) आर्यसमाजों की अधिक संख्या कांग्रेस से सहमत थी या उसमें

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आर्यो! आओ मूल को समझें

● भद्रसेन

गतांक से आगे...

जबकि हमारे शास्त्र मानव शरीर को विशेष रूप से **"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्"** (चरक सूत्र–1,15) कहते हैं अर्थात् यह मानव तन, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःखों, तीनों तापों से छुटकारा दिलवाने में सहयोगी बनाते हैं जिसका स्पष्ट अभिप्राय है कि संसारी सुख और पारमार्थिक आनन्द शरीर द्वारा ही प्राप्त होता है। तभी तो कहा है **"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"** (कुमारसम्भव–5,33) इसी महत्त्वपूर्ण रहस्य को सामने रखकर चरक महर्षि ने कहा है–

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।
चरक निदान 6,7

अर्थात् सर्वतः प्रथम ध्यान देने योग्य बात बताते हुए कहा है, कि अन्य सब कर्मों बातों को पीछे रखकर पहले शरीर की सँभाल करें क्योंकि इसके अस्वस्थ, बीमार होने पर अन्य सब होते हुए भी न हुए जैसा हो जाता है इसीलिए हम अपने जीवन में पग–पग पर देखते हैं कि सारी सिद्धियाँ सफलताएँ शरीर द्वारा होने वाले परिश्रम पर निर्भर हैं।

यह जीवन तथा जगत् प्रभु की अद्भुत रचना है। अतः ये मिथ्या, माया नहीं हो सकती। यह तो एक अनोखा अवसर है जिससे हम प्रत्येक प्रकार. की प्रगति कर सकते हैं। जैसे कि भारतीय मूल के अमर्त्यसेन ने अर्थशास्त्र में विशेष कार्य करके नोबेल पुरस्कार लेकर इस अध्ययन शोध के अवसर का कैसा अच्छा लाभ उठाया। ऐसे ही हम अपने चारों ओर देखते हैं कि अनेक क्षेत्रों में सैंकड़ों ने उन–उन प्राप्त अवसरों का लाभ उठाकर केवल अपना नाम, यश ही उज्ज्वल नहीं किया, अपितु धन, प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। ऑलम्पिक खेलों में हज़ारों भाग लेते हैं जो कि अपने–अपने देश की दृष्टि से योग्यतम होते हैं। इस अवसर को प्राप्त करने वालों में से दो सौ के लगभग ही पुरस्कार प्राप्त करते हैं। इनमें से कुछ दो–तीन–चार या इससे अधिक स्वर्णपदक प्राप्त करते हैं। 2004 में भारतीयों में से केवल राज्यवर्धन राठौर ने ही रजत पदक प्राप्त करके भारतीय स्तर पर नाम, धन ही प्राप्त नहीं किया, अपितु भारत देश के गौरव को भी बढ़ाया। यह सब तभी सिद्ध होता है, जब कोई खेल भावना के साथ आशा, उत्साह पूर्वक अवसर का लाभ उठाने की तीव्र तड़प से भरा होता है।

मेरा अपना जीवन इसका साक्षी है कि हमारे माता–पिता ने अपने सम्बन्धों, कर्त्तव्यों को निभाकर यह जीवन रूपी अवसर हमें दिया है। ऐसे ही हमारा जिससे जो सम्बन्ध है, उसके अनुरूप सम्बन्ध को निभाते हुए, अपने जीवन को सफल बनाएँ। तभी तो वेद यत्र–तत्र रिश्तों का उदाहरण देकर बात को समझाता है।

हाँ, यह ध्यान देने योग्य बात है कि लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सही राह पर चलना आवश्यक होता है, भटकना नहीं अतः आइए! जीवन सफलता के लिए सही राह (**सुपथा,** यजु.–40.16) को पहचानें और अपनाएँ।

वह मार्ग है–

1. इस जगत् के स्वामी ने हमारे भले के लिए ही सारे भौतिक पदार्थ दिए हैं अतः उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए और आत्मिक बल प्राप्त करने के लिए उसकी उपासना, भक्ति करें। ईश्वर ही सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आदि गुणयुक्त हैं। जिस–जिस में ऐसे गुण नहीं हैं, ऐसे को प्रभु के स्थान पर अपना आराध्य न बनाएँ।

2. ऐसे गुणनिधान ईश्वर की आज्ञाओं का पालन ही धर्म, भक्ति, आस्तिकता है तभी तो हमारे शास्त्र कहते हैं कि ईश्वर के ज्ञानमय वेद ही उसकी आज्ञाएँ हैं अतः वही धर्म है। तभी तो–**"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्"** (वैशेषिक 1.3.1,) **चोदना लक्षणोर्थो धर्मः** (मीमांसा 1.1.2) सदृश वचन प्रचलित हुए हैं। यह ध्यान रहे धर्म आचरण की चीज है, कीर्तन, प्रदर्शन की नहीं और तभी तो कहा है–**"आचारः परमो धर्मः।"** (मनु. 1.108)

182 शालीमार नगर,
होशियारपुर 146001

देवी पर बलि

● पं गंगा प्रसाद उपाध्याय

क्या करना था क्या लगे करने,
हमें यही अचम्भा है।
बहनों और भाइयो !

आप लोग मेले में लाखों की संख्या में एकत्र हुये हैं। कितने मार्ग का कष्ट उठाकर और धन व्यय करने आये हैं। यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? क्या आपने कभी सोचा है कि आप धर्म करने आते हैं या अधर्म ? पुण्य कमाने आते हैं या पाप ? आप तो यही समझ कर मेले में आते हैं कि देवी जी के दर्शन करेंगे, ईश्वर हमसे प्रसन्न होगा, हमारा काम सिद्ध होगा। हमको सुख मिलेगा और हम स्वर्ग को जायेंगे।

परन्तु क्या आपने सोचा है कि सब से बड़ा धर्म 'अहिंसा' है। **'अहिंसा परमोधर्मः'** हमारे वेदशास्त्रों में यही लिखा है। हमारे ऋषि मुनि, दानवीरों ने दूसरों को सुखी बनाने के लिये महान् कष्ट उठाये हैं। महात्मा बुद्ध ने यही कहा। महात्मा गांधी का भी यही उपदेश है। अहिसा परम धर्म है, हिंसा घोर पाप है। जो अहिंसा करेगा उससे ईश्वर प्रसन्न होगा, जो किसी की हिंसा करेगा वह नरक को जायगा।

अब बताइये कि आप देवी की मूर्ति के सामने पशु की बलि चढ़ाते हैं। यह तो हिंसा हुई। यह धर्म कैसा ? क्या किसी जीव को मारने से आपको हत्या का पाप नहीं लगता ?

आप तो देवी को माता कहते हैं। माता तो पुत्रों पर दया करती है, सबको प्यार करती है, वह कब चाहेगी कि उसकी सन्तान को कष्ट हो, उसका बलिदान हो। क्या देवी शेर, चीता या भेड़िया है जिसको जानवरों का मांस पसन्द हो ? फिर आप स्वयं देख लें कि देवी तो मांस खाती नहीं, पंडे पुजारी ही चट कर जाते हैं, उनको मज़ा आता है और पाप आपको लगता है।

ईश्वर तो सभी पर दया करते हैं। उनके लिये कीरी और कुञ्जर एक से। यह दयालु है। सब को बनाते हैं, सबका पालन करते हैं। आप ईश्वर के बनाये हुये इन्हीं पशुओं को मारते हैं और झूठ–मूठ यह समझ लेते हैं ईश्वर इससे प्रसन्न होगा। ईश्वर तो सबका पिता है। आप उसके पुत्र–पुत्रियाँ हैं और यह जानवर भी आप ही के समान ईश्वर के बेटे–बेटियाँ हैं। अगर एक भाई अपने छोटे भाई को मार डाले तो पिता अवश्य ही नाराज़ होगा। इसी प्रकार अगर आप धर्म के नाम पर किसी पशु की जान ले लें तो ईश्वर आपको अवश्य दण्ड देगा।

आप समझते हैं कि आपने मिन्नत मानी {मिन्नत मांगी} और कहा कि हे देवी जी ! हमारा यह काम सिद्ध हो जाए। हम आपके नाम पर बकरा चढ़ा देंगे। यह किसी ने आपको धोखा दिया है। ईश्वर हमारे कर्मों का ही फल देता है। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। श्री तुलसीदास जी कह गये हैः–

कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा।

अब बताइये ! आप हत्या कर रहे हैं। हत्या का फल क्या सुख होगा ? पशुओं में वैसी ही जान है जैसी आप में है। आपके पैर में काँटा लग जाता है तो आप चीख–पुकार करते हैं, आफ़त मचा देते हैं। पर आप पशु के गले पर छुरी चलाते हैं, आपको तरस नहीं आता, आप कसाई नहीं हैं, परन्तु धर्म के नाम पर कसाई का काम करते हैं।

आप समझते हैं कि जीव को मार कर आपने अपने जीव की रक्षा की अर्थात् जीव के बदले जीव दिया। यह भी अज्ञान का फल है। ईश्वर किसी के बदले किसी दूसरे को नहीं मारता। क्या यह हो सकता है कि चोरी करे रामलाल और सजा मिले मोहनलाल को। ऐसा अन्धेर तो सरकार भी नहीं करती। ईश्वर तो दयालु भी है और न्यायकारी भी है और सर्वज्ञ भी। वह तो जानता है कि पाप किसने किया और सजा किसको मिलनी चाहिये। याद रक्खो कि जिसको आप मारते हैं उसका खून आपके सिर लगेगा और कोई पंडा पुजारी ईश्वर के कोप से आपको न बचा सकेगा।

मनुस्मृति में मनु महाराज ने बताया है किः–

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयो।
संस्कर्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकः।।
(मनु. अ. 5.51)

कसाई आठ तरह के होते हैं। जो मारने की अनुमति दे वह भी कसाई, जो शरीर का छेदन करे वह कसाई, जो प्राण ले वह कसाई, जो माँस बेचे वह कसाई, जो माँस खरीदे वह कसाई, जो माँस पकावे वह कसाई, जो माँस परोसे वह कसाई, जो माँस खाये वह कसाई। अब सोचिये कि आप जो पशु की बलि चढ़ाते हैं, कसाई हुये या नहीं। मनु महाराज तो यही कहते हैं कि जो पशु की बलि चढ़ावे वह भी कसाई है और जो पंडे या पुजारी पशु को मारने की प्रेरणा करे वे भी कसाई हुये।

कुछ लोगों ने झूठ–मूठ यह बात उड़ा रखी है कि जो पशु देवी को चढ़ाया जाता है, वह सीधा स्वर्ग को जाता है। यह मूर्खता की बात है। यदि पशु को देवी के नाम पर मारने से पशु स्वर्ग को जाए तो लोग अपने माता–पिता की बलि चढ़ाकर स्वर्ग को क्यों नहीं भेज देते। यदि ऐसा होता तो स्वर्ग की प्राप्ति आसान हो जाती। लोग शास्त्र क्यों पढ़ते ? ब्रह्मचर्य क्यों रखते ? परोपकार क्यों करते ? योग की साधना क्यों करते ? एक छुरी से ही स्वर्ग का रास्ता खुल जाता।

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

न जाने कब मैं प्रभु के हृदय में स्थान पाऊँगा ?

● आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।

ऋ. 7.86.2

मनुष्य जब यह देखता है कि नित्य नई–नई उत्पत्तियाँ हो रही हैं, नित्य नए–नए प्राणी उत्पन्न हो रहे हैं, नित्य नई–नई आकृतियाँ और नई–नई प्रकृतियाँ सम्मुख आ रही हैं, हर रोज़ नई–नई शक्लें और नई–नई अक्लें सामने आ रही हैं, प्रतिदिन नए–नए पौधे पैदा हो रहे हैं, नए–नए बीज अंकुरित हो रहे हैं, हर ऋतु में सुन्दर–सुन्दर फूल खिल रहे हैं, सुन्दर–सुन्दर स्वादिष्ट–स्वादिष्ट फल पैदा हो रहे हैं, नाना प्रकार के अन्न–अनाज उत्पन्न हो रहे हैं। इस जग में नित्यप्रति कोई आ रहे हैं और नित्यप्रति ही इस जग से कोई जा रहे हैं, अर्थात् कोई पैदा हो (जन्म) रहे हैं और कोई मर रहे हैं। यहाँ कोई हँस रहे हैं, और कोई रो रहे हैं, कोई नाच रहे हैं, और कोई गा रहे हैं, कोई उठ रहे हैं, और कोई बैठ रहे हैं, कोई चल रहे हैं, कोई रुक रहे हैं, कोई जाग रहे हैं, कोई सो रहे हैं, कोई खुशी के मारे फूले नहीं समा रहे हैं और कोई दुःखों के मारे कुम्हला रहे हैं। फिर यह देखने में, सुनने में आता है कि यह सब कुछ जो कुछ हो रहा है – जो कुछ सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, फूल–फल, अन्न–अनाज, जीव–जन्तु आदि के रूप में सामने आ रहा है, यह सब कुछ बड़ी बुद्धिमानी से हो रहा है। प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति में, उसकी रचना में, उसकी बनावट में ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कोई बहुत बड़ा बुद्धिमान् व्यक्तित्व उसके पीछे कार्य कर रहा हो। हम आँखों को देखते हैं, आँखों की रचना–बनावट को देखते हैं, आँखों के कार्य देखते हैं, आँखों का व्यापार देखते हैं तो ये आँखें ही इन आँखों को देखकर चकित रह जाती हैं। यह सोच कर कि न जाने किसने ये बनाई हैं ? फिर कितने हित से बनाई हैं, और फिर इस प्राणी को इन से देखने –भालने में कोई दिक्कत न हो, तो इसके लिये उसने सूर्य–चन्द्र, विद्युत्, अग्नि आदि का भी प्रबन्ध कर दिया है। फिर हर जीव की आँखों को भी अपने–अपने ढंग से बनाया है, फिर अपनी ओर से इन्हें ऐसा बनाया है कि यदि वह व्यक्ति सावधान रहे तो जीवन भर उसकी आँखें उसको राह दिखाती रहेंगी, फिर उसको ही नहीं वरन् अन्यों को भी वे राह बताती रहेंगी, स्वयं ये पढ़ती और औरों को भी पढ़ाती रहेंगी...। ऐसे ही क्या तो निराले ये श्रोत्र हैं, कर्ण हैं, कान हैं। क्या तो निराली यह नासिका, नाक है। क्या ही विचित्र यह जिह्वा है, जो अपने दोनों गुणों के कारण विशेष महत्व रखती है। एक तो बोलने का और दूसरा चखने का, स्वाद लेने का, खाने–पीने का। न जाने कैसी–कैसी वस्तुएँ, कैसे–कैसे पदार्थ, कैसे–कैसे व्यक्ति इस जगत् में देखने–सुनने को मिलते हैं, कैसे–कैसे जलचर–थलचर और नभचर संसार में दिखाई देते हैं, कैसी–कैसी प्यारी–प्यारी मछलियाँ, कैसे– कैसे रेंगने वाले सर्प आदि प्राणी, कैसे–कैसे जंगली हिरण, चीता, शेर, हाथी और कैसे–कैसे ये ग्राम्य गौ, घोड़ा, भेड़, बकरी आदि–आदि पशु, कैसे–कैसे ये कोयल–कौआ, तोता– मैना, हंस आदि–आदि पक्षी हैं, इत्यादि। अपने–अपने ढंग से ये सभी प्राणी अपने–अपने कर्मों को करने और अपने–अपने कर्मों के फलों को भोगने के लिये या नानाविध प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिये इस संसार में आए हुए हैं। यह सब कुछ किसी उद्देश्य से आ रहा है और किसी उद्देश्य से हो रहा है।

क्या तो सूर्य–चन्द्र और क्या–क्या निराले इनके कार्य, क्या तो मेघ, वृष्टि, ये जल के नानाविध स्रोत–प्रवाह, ये ताल–तलैयाँ, ये नदी–नद और ये समुद्र एवं क्या–क्या इनकी उपयोगिताएँ हैं, क्या–क्या अद्भुत मूल्यवान् पदार्थ लोहा, ताम्बा, पीतल, चाँदी, सोना, हीरे, मोती, जवाहरात आदि–आदि, कैसे–कैसे उपयोगी मूल्यवान् द्रव्य–मिट्टी का तेल, डीजल, पेट्रोल आदि–आदि इस जगत् में हैं और ये सब किसी विशेष प्रयोजन से हैं।

सुनते हैं किसी एक अद्वितीय दिव्य देव की यह सब करामात है, किसी एक ही परम देव की यह सब देन है, किसी एक ही अनुपम शक्ति की यह सब रचना है, यह सब कृति है, जो अपने जीवरूप प्यारे पुत्रों के प्रति बड़े प्यार से प्रवाहित हो रही है। यह सतत् प्रकाश का प्रवाह, यह निरन्तर जल का प्रवाह, यह अनवरत जीवन–प्रद प्राणवायु का प्रवाह, यह लगातार औषधि–वनस्पतियों का प्रवाह, यह प्रतिदिन फूल–फलों का प्रवाह, यह अहर्निश धन–धान्य का प्रवाह, यह दूध–दही–घी का प्रवाह, यह नानाविध मीठे–खट्टे, तीखे–कड़वे रसों का प्रवाह आदि– आदि, यह सब सिद्ध करता है कि उस अद्वितीय परम देव का अपने इन प्रिय पुत्रों, जीवों पर कितना स्नेह है...। कहीं ये अन्धेरे में ठोकर न खाएँ, कहीं ये पानी बिन प्यासे न रह जाएँ, कहीं ये अन्न बिन भूखे न रह जाएँ, कहीं ये औषध के अभाव में पीड़ा से कराहते न रह जाएँ, कहीं दूध–दही–घी के बिना रुखे–सूखे न रह जाएँ, कहीं प्राण–वायु बिन इन का दम न घुट जाए, कहीं किसी तरह के मीठे–खट्टे रस के लिये ये तरसते न रह जाएँ, आदि–आदि सोचकर यह सब कुछ प्रभु ने अपने इन जीवों के लिये प्यार से प्रवाहित किया है।

यह सब कुछ उसने इतना बुद्धिपूर्वक बनाया है, इतना सोच–समझ कर बनाया है कि बड़े–बड़े बुद्धिमान् भी इस सब को देख कर चकित रह जाते हैं।

हम सोचते हैं यह **'भूः'**–भूमण्डल यह **'भुवः'**–अन्तरिक्ष यह **'स्वः'**–द्युलोक आदि किस की रचना हैं? तो वेद बताता है कि–यह सब एक ही वरणीय वरुणदेव की रचना है। उसी एक ही दिव्य देव ने इस को बनाया है और वह भी बड़ा सोच–समझकर, बड़ा बुद्धिपूर्वक बनाया है, अपनी महिमा से बनाया है और इसको बनाकर यों ही नहीं छोड़ दिया है उसने इस सब की रचना भी की है, इस को सम्भाला भी है, इस को थामा भी है। उसने केवल इस द्यु–भू को बनाया और थामा ही नहीं है, अपितु इस सकल ब्रह्माण्ड में रहने वाले सब प्राणियों को भी उत्पन्न किया है और उनको वह सम्भाल भी रहा है। इन सब प्राणियों को अपनी न्याय–व्यवस्था से वह जैसे–जैसे उनके कर्म होते हैं, वैसे–वैसे फल भी प्रदान करता रहता है। इन सब प्राणियों को सदा सर्वत्र वह सन्मार्ग की ओर प्रेरित भी करता रहता है, फिर भी वे तदनुसार नहीं चलते हैं, तो वह उन्हें उन्हीं के सुधार के लिये यथोचित दण्ड भी देता है। वह पृथिवी और पृथिवी के, अर्थात् इस भू–भूमण्डल और इसके प्राणियों को ही नहीं वरन् इससे 13 लाख गुने बड़े गतिशील इस सूर्य को भी धारण किये हुए है और न जाने वह किन–किन और ग्रहों–उपग्रहों को धारण किये हुए हैं ? समय आने पर वह इन सब का संहार भी करता है....।

इस अद्भुत प्यारे प्रभु देव के इस विशाल ब्रह्माण्ड को देखकर, इस में नानाविध प्राणियों को देखकर, उनके लिये इस महान् विशाल खाने–पीने, रहने–सहने, पहनने–ओढ़ने, आदि– आदि के प्रबन्ध को देखकर एक मनुष्य का सिर सम्मान से नत हो जाता है, हृदय श्रद्धा से भर जाता है, और एकदम वह सोचने–विचारने लगता है कि–पता नहीं, वह अद्वितीय दिव्य देव कौन होगा? कैसा होगा ? कितना महान होगा ? कितना सशक्त होगा ? कितना बुद्धिमान होगा? कितनी सूझबूझ वाला होगा ? कितना विशाल उसका हृदय होगा ? कितनी बड़ी उसकी सामर्थ्य होगी ? कितना दिव्य उसका मस्तिष्क होगा ? कितना अद्वितीय उसका ज्ञान होगा ? कितना अलौकिक उसका विज्ञान होगा ? कितना हित भरा उसका हृदय होगा ? कितना दिव्य उसका दिल होगा ? कितना अनोखा उसका प्यार होगा ? कितना दिव्य उसका दुलार होगा ? मेरा जन्म हुआ, भूख से मेरे मुँह से 'ओ३म्' ही निकला था कि उस परम प्यारे प्रभु ने कवोष्ण–कोसे दूध से भरे दो (स्तन) थर्मस मेरे लिये उपस्थित कर दिये। ये माता–पिता आदि तो तब मेरे लिये दो–चार कपड़े–लत्ते मात्र ही लाए थे, जब मेरा जन्म हुआ था, पर उसने तो मेरे जन्म से भी पूर्व मेरे खाने–पीने, रहने–सहने का प्रबन्ध भी कर दिया था। मेरे माँ–बाप में उसने मेरे प्रति इतना स्नेह–मोह–लाड़–प्यार भर दिया कि वे सहज ही मेरे लिये तब सब तरह से सचिन्त रहने लगे और मैं निश्चिन्त होकर खाने–पीने, पहनने– ओढ़ने और रहने–सहने लगा।

न जाने वह प्यारा प्रभु कितना महान् होगा ? कितना दिव्य होगा ? कितना निराला होगा ? कितना अद्वितीय होगा ? यह सोच कर मेरे मन में एक इच्छा उत्पन्न हुई, एक जिज्ञासा जगी कि–"मैं उसको जानूँ, मैं उसके दर्शन पाऊँ, मैं उसको देखूँ, मैं उसको निहारूँ और धर दूँ उसके पावन चरणों में अपना यह उत्तमांग, अपना यह सिर, और वह भी स्नेह और सम्मान के साथ, श्रद्धा और आभार के साथ...।" तब मैं जप–तप करने में लग गया, स्वाध्याय और सत्संग में भी जुट गया, मैं भजन और कीर्तन में भी झूमने लगा, मैं साधु और सन्तों के संग में भी बैठने लगा। मैं पद्मासन–सिद्धासनों में बैठ–बैठ कर प्राणायाम पूर्वक प्रत्याहार का अभ्यास भी करने लगा। मैं मिनटों नहीं, घण्टों–घण्टों बैठ–बैठ कर धारणा–ध्यान और समाधि को सिद्ध करने का प्रयत्न भी करने लगा, पर मुझे तब भी उस वरणीय वरुण देव का दर्शन नहीं हो सका। होता भी कैसे ? क्योंकि मैंने उस वरणीय वरुण देव के भीतर अर्थात् उसके हृदय में अपना स्थान ही नहीं बनाया । कदाचित् मैंने कुछ ऐसा विशेष अभी नहीं किया होगा जिससे वह मुझ पर अपनी अनुकम्पा करता। पर फिर भी मैं अभी निराश नहीं हूँ, अभी हताश नहीं हूँ। वेद के शब्दों में मेरे भीतर अब भी एक तड़प है, वह यह कि–**(कदा नु वरुणे अन्तः भुवानि)** न जाने कब वह सौभाग्यशाली दिन आयेगा कि जब मैं उस वरणीय वरुण देव के भीतर प्रवेश पाऊँगा–उसके हृदय में अपने लिये स्थान बना पाऊँगा ? न जाने कब अपने को उसके प्यार का पात्र बना पाऊँगा ? तथा उसका साक्षात्कार कर सकूँगा ? न जाने कब, न जाने कब, न जाने कब ?

लेखक की पुस्तक
'वैदिक रश्मियों' से साभार

मानव ! सावधान ! आगे भोगयोनियाँ हैं।

● रामनिवास 'गुणग्राहक'

एक विचारशील मित्र ने एक बार मुझसे पूछा–क्या मनुष्य को भी पशु–पक्षी, कृमि कीट–पतंगों की योनियों में जाना पड़ता है? मैंने बड़े सहज भाव से उत्तर दिया कि मनुष्य से इतर सब प्राणियों को हम सब प्रायः भोगयोनि कहते हैं! भोग कर्म के बाद ही मिलता है। मानव उभय योनि कहा जाता है अर्थात् वह कार्य भी करता है और कतिपय कर्मों का भोग सुख–दुख के रूप में करता है। **स्वतन्त्रो वै कर्त्ता** के अनुसार जो कर्म करने में स्वतन्त्र है वही कर्त्ता है। परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य को वेद के द्वारा जहाँ संसार व शरीर का विज्ञान प्रदान किया, अपने स्वरूप का ज्ञान प्रदान किया, वहीं उसे अच्छे–बुरे कर्मों का भी ज्ञान दिया। कर्म और कर्मफल का बोध देकर परमेश्वर ने मनुष्य को–**'कर्तुं–अकर्तुं अन्यथा कर्तुम'** के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया ! न्याय का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि कर्मफल व्यवस्था लागू करने से पहले अच्छे और बुरे कर्मों का ज्ञान देना अनिवार्य है। अच्छे–बुरे का ज्ञान दिये बिना दण्ड देना न्याय नहीं कहा जा सकता। ऐसा परमात्मा ने केवल मानव के साथ किया है कि उन्हें वेद के द्वारा अच्छे–बुरे कर्मों का ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही दे दिया था। अच्छे बुरे का ज्ञान देने के बाद जैसा चाहे वैसा करने के लिए स्वतन्त्र होने के कारण कर्त्तापन मनुष्य में ही है। इसलिए मानव तन पाकर जीव जो कर्म करता है, उन्हीं में से कुछ ऐसे घोर कर्म होते हैं, जिनका फल भोगने के लिए हमें पशु–पक्षी, कृमि, कीट–पतंगों की योनियों में जाना पड़ता है। मैंने उन्हें समझाया कि ये असंख्य योनियों में विचरण करने वाले अगणित प्राणी भी कभी मनुष्य होंगे। मनुष्य जन्म पाकर इन्होंने परमेश्वर की वेदाज्ञा का जाने–अनजाने में जो उल्लंघन या अतिक्रमण किया, उन्हीं का फल भोगने के लिए इन्हें इन निम्न योनियों में आना पड़ा। इनकी संख्या का अनुमान करके हम विचार कर सकते हैं कि एक बार मनुष्य योनि से पतित होकर कितने युगों तक कितनी व कैसी–कैसी योनियों में भटकना पड़ता है। मानव मूर्खतावश इस नर तन का मूल्य नहीं समझता, नर तन और वेद ज्ञान पाकर भी जो विषयाधीन होकर वेदाज्ञा का घोर उल्लंघन करते हैं तो कहो कि परमात्मा उन्हें किस आधार पर मनुष्य का जन्म देगा?

मैंने फिर उन्हें दो प्रकार के उदाहरण देकर समझाने का प्रयास किया। **प्रथम शास्त्रीय सैद्धान्तिक और दूसरा लौकिक व्यावहारिक शास्त्रीय सिद्धान्त** की बात करें तो वर्षों पूर्व जब मैने योग दर्शन का स्वाध्याय किया तो कई आर्य विद्वानों के भाष्यों को देखा ताकि सूत्र विशेष और योग शास्त्र के आशय को भली भाँति आत्मसात् किया जा सके। जब हम एक ही तथ्य को कई और दृष्टियों से जानने–समझने का अभ्यास करते हैं तो आनन्द बहुत आता है। नये–नये द्वार खुलते हैं, नये नये विचार उभरते हैं और लगता है कि हमारा स्वाध्याय सफल हो गया। योगदर्शन के प्रारम्भ में ही कहा है कि चित की वृत्तियों के निरोध करने, रोक देने को ही योग कहते हैं। उसका फल **'तदा दृष्ट स्वरूपेऽवस्थानम्'** के द्वारा यह बताया है कि जीवात्मा अपने व परमात्मा के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। अगले सूत्र में यह बताया गया है कि अगर हम योगस्थ नहीं होते. तब हमारी स्थिति क्या होती है? कहा है, **'वृति सारूप्यं इतरत्र'**–अर्थात् इतरावस्था में हम वृत्ति सारूप्य रहते हैं! जैसी वृति होती है, वैसे ही हम होते हैं। हम इस सूत्र को थोड़े व्यापक स्वरूप में देखने का प्रयास करें तो हम देख सकेंगे कि यही सूत्र हमें मानवेतर योनियों तक ले जाने का रास्ता दिखा रहा है।

हम सबके लिए एक सुपरिचित मंत्र है–**"उलूकयातुं शुशुलक यातुं"** मंत्र में प्रेरणा की है कि हे मनुष्य तू उल्लू की चाल छोड़ दे। भेड़िये की चाल छोड़ दे, तू कुत्ते की, कोक की गरुड़ की व गिद्ध की चाल छोड़ दे। इस जीवन को सामान्य दृष्टि से देखें तो–**'वृत्ति सारूप्यं इतरत्र'** के बारे में कह सकते हैं कि जब योगस्थ नहीं होते तो वृत्ति सारूप्य ही होते हैं। हमारा स्वभाव, व्यवहार वृत्यनुसार ही होता है। वृत्ति ही हमारी जगत् व्यवहार में प्रवृत्ति की हेतु होती है किसी कार्य विशेष में प्रवृत्ति ही तद्वत् संस्कारों का बीजारोपण मानी गयी है। इस प्रकार यह वृत्ति संस्कारों का चक्र ही हमारे इस जीवन और भावी जन्म की दिशा तक करता है। वेद जब उल्लू और भेड़िये आदि की चाल को छोड़ने की बात कहता है तो इसका आशय यही है कि हमारे जीवन में उभरते जा रहे उल्लू के स्वभाव को त्याग दें, भेड़िये, कुत्ते व गिद्ध की प्रवृत्ति को न अपनायें। मानव–जीवन में जाने अनजाने ये पनपने वाली पाशविक प्रवृत्तियाँ ही जब परिपक्व होने लगती हैं, हमारे स्वभाव का अंग बन जाती हैं तो कालान्तर में शरीर–त्याग के बाद ये प्रवृत्तियाँ ही हमारे आगामी जन्मों का कारण बनती हैं। वेद जिस उलूक वृत्ति को त्यागने, भेड़िये की वृत्ति को त्यागने की प्रेरणा कर रहा है, अगर हम उसे त्याग नहीं पाते तो निश्चित रूप में यह स्वीकारना तर्क सम्मत होगा कि वह वृत्ति परिपक्व होकर जन्मान्तरों में हमें उल्लू की योनि में ले जाएगी। भेड़िये की वृत्ति भेड़िया बनायेगी तथा कुत्ते आदि की वृत्तियाँ तत्तत योनि की ओर प्रवृत्त करेगी। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन महर्षि मनु के इस श्लोक में भी हो रहा है–

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुण प्रायं तं करोति शरीरिणम्।।

जो गुण इन जीवों के देह में अधिकता से वर्तता है, वह गुण उस जीव का अपने सदृश कर देता है। इसीलिए तो वेद चेतावनी दे रहा है कि मनुष्य! तू उल्लू, भेड़िया, कुत्ता, गिद्ध आदि की चाल न चल, उनके सदृश कर्म न कर। ऐसा करना मनुष्य को उन्हीं के सदृश बना देगा और शरीर त्याग के बाद मनुष्य को वैसी ही योनियों में जाना पड़ेगा। परमात्मा के द्वारा रचित–संचालित प्रकृति में अकारण कुछ नहीं होता तो मानव जन्म पाकर किये गये कर्मों के करण विविध शरीरों के मिलने के पीछे भी कोई कारण तो होना ही चाहिए, इस व्यवस्था में कोई नियम सिद्धान्त तो काम कर ही रहा होगा। चूंकि हम परमात्मा के किसी कार्य व किसी नियम व्यवस्था को सर्वांश में तो जान नहीं सकते, मगर वेदशास्त्रों के आलोक में कुछ तर्क संगत चिन्तन करके ही हम अपनी चेतना को सही दिशा दे सकते हैं!

लोक व्यवहार को लेकर हम इस तथ्य को समझना चाहें तो हमारी शिक्षण व्यवस्था (प्राचीन काल की वर्णव्यवस्था) इसका अच्छा उदाहरण हो सकती हैं। एक विद्यार्थी चिकित्सा के क्षेत्र में रुचि रखता है वह चिकित्सा शास्त्र को पढ़कर आत्मसात करता है और आगे चलकर चिकित्सक बन जाता है। शिक्षक, वकील, इन्जीनियर, वैज्ञानिक सब इसी रीति से बनते हैं। चिकित्सा शास्त्र पढ़ने वाला, चिकित्सा सम्बन्धी अनुभूतियों, व्यावहारिक ज्ञान से भरपूर व्यक्ति को न्यायालय में खड़ा होकर वकालत करते हुए किसी ने कभी देखा है? यदि नहीं तो उल्लू, कुत्ते, गिद्ध की प्रवृत्तियों से भरे हुए मनुष्य को पुनः मनुष्य का जन्म भी क्यों कर मिलेगा? हाँ जो मानवीय सदगुणों से युक्त कर्म–व्यवहार करता है, ईश्वर की वेदाज्ञा का पालन करते हुए जो देव बनने का प्रयास कर रहा है, वह उल्लू–गिद्ध आदि की निम्न योनियों में कैसे जा सकता है। इसीलिए कहा जाता है–**'कृतं फलति सर्वत्र न अकृतं भुज्यते क्वचित'** अर्थात् सर्वत्र सदा किया हुआ ही फलता है, जो नहीं किया वह कभी किसी को भोगने को नहीं मिलता।

मानव का शरीर तो परमात्मा की प्राप्ति का एक सुअवसर है। यह उन भाग्यशाली आत्माओं को मिलता है, जो यह पात्रता रखते हैं। या तो मानव शरीर पाकर जो परोपकार आदि उत्तम कर्म करते हैं या फिर निम्न योनियों में जाकर नरतन पाकर किये पाप कर्मों का फल भोगकर जो पुनः निर्मल होकर आत्मोन्नति के योग्य हो गये हैं। कुल मिलाकर सच यह है कि यह मानव का शरीर हमें केवल और केवल वेदाज्ञानुसार कर्म करते हुए आत्म उन्नति के रास्ते आत्म कल्याण के लिए ही मिला है। उपनिषद के ऋषि उच्च स्वर में चेतावनी दे रहे है– **'इह चेद्वेदीदथ सत्य मस्तिन हा चेद वेदीद् महती विनष्टः'** – अर्थात् इस मानव तन को पाकर अगर हमने उस परमात्मा को जान लिया है तो हमारा यह नरतन पाना सफल है! अगर हम उसे नहीं जान पाये तो समझो हमारा बहुत बड़ा विनाश हो गया। प्रभु प्राप्ति के लिए प्राप्त मानव तन रूपी अवसर को खो देना कितना बड़ा विनाश है यह सामान्य जन समझ नहीं पाते। आइये तनिक समझने का प्रयास करें।

मैने उस मित्र से पूछा कि आपके घर में मनुष्य अधिक हैं, या अन्य जीव–जन्तु ? विचारशील थे, तनिक सोचकर बोले– मेरे ही क्यों किसी के भी घर में जितने मनुष्य हैं, उनसे कई गुना मक्खी–मच्छर, कीड़े–मकोडे आदि क्षुद्र जीव होते हैं। मैने कहा वर्षाकाल में जल–जंगल में उत्पन्न होने वाले क्षुद्र जीव,! किसानों की फसल कटने के बाद शेष बचे अनुपयोगी मलवे में उत्पन्न होने वाले अगणित जीव, नदी, नाले–तालाब से लेकर समुद्रों में विचरण करने वाले मेंढक–मछली आदि की संख्या का अनुमान करने के साथ ही पशु–पक्षियों पर भी दृष्टि डालें तो हमारे लिए यह आँकड़ा निकालना कठिन हो जाएगा कि मानवेतर प्राणियों की संख्या मानव से कितनी गुणा अधिक है। मनु महाराज के–**'स्थावरा कृमि कीटश्च'** वचनानुसार स्थावर वृक्षादि की भी गणना करें तो यह संख्या हमारी गणना सामर्थ्य से बाहर जाती हुई लगती है। ईश्वर जाने हमारी कौन–सी वृत्ति के कारण हमें किस योनि में कितने काल तक रहकर क्या–क्या भोगना पड़े। अब हम तनिक उस कल्पना को इस स्थिति में मन–मस्तिष्क में लाकर सजीव करके देखें कि इन समस्त योनियों में विचरण करने वाले प्राणी अपने उन पापकर्मों का फल भोग रहे हैं, जो इन्होंने नर–तन

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

☞ पृष्ठ 08 का शेष

मानव ! सावधान ! ...

पाकर किये थे। यों तो असंख्य योनियों में एक मानव एकमात्र योनि है, पुनरपि उन असंख्य योनियों में से एक–एक में अगणित प्राणी जो पूरी मानव जनसंख्या के असंख्य गुना अधिक हैं। इतने दुर्लभ मानव तन को पाकर भी हम पशु–पक्षियों की ही भाँति उदर भरण और विषय–सेवन में ही व्यतीत कर दें। **'मननात मनुष्यः'** के अनुसार अपनी मननशीलता का सदुपयोग करने परमात्मा की वेदाज्ञा को जानने–समझने और उसके अनुसार जीवन जीने का प्रयास न करें तो नर तन व वेदज्ञान का मूल्य जानने वाले तत्वदर्शी ऋषि हमारे लिए–**'महती विनष्टि'** की चेतावनी देंगे ही। हम तो ऐसे प्रमत्त हो चुके हैं कि ऋषियों की इस चेतावनी पर भी कान नहीं धरते।

यूँ तो हम सब एक स्वर से बोलते हैं कि मनुष्य का शरीर पाना बहुत बड़े सौभाग्य की बात है, मगर जो इस मानव तन को पाकर भी पेट भरने, परिवार पालने से आगे की सोच ही नहीं सकते, धर्म–कर्म, पुण्य–पाप की ठीक परिभाषा नहीं जानते, उनके लिए यह नर–तन सौभाग्यप्रद नहीं, दुर्भाग्यशाली बन कर रह जाता है। एक पढ़ा–लिखा, योग्य, प्रतिभाशाली व्यक्ति जो अपनी उस शिक्षा का सदुपयोग करके कहीं नौकरी कर सकता था, अपना व्यापार कर सकता था, अध्यापक बनकर सैकड़ों सहस्रों युवक युवतियों का जीवन निर्माण कर सकता था, वह अनपढ़–गँवारों के साथ मिलकर मजदूरी करे तो बताओ उसकी विद्या भूषण कही जाएगी या दूषण ? उसने विद्या पढ़ने के लिए जो–श्रम, समय और संसाधन लगाये, वे समर्थक माने जाएँगे. या निरर्थक? इन प्रश्नों का बड़ी सरलता से उत्तर देने वालों से पूछो कि बड़े सौभाग्य अथवा पुण्योदय से प्राप्त मानव जीवन को भोग–योनि वाले पशु–पक्षियों की ही भाँति पेट भरने–परिवार पालने में व्यतीत कर देना क्या कहा जाएगा? हमने अपने जीवन में कितनी बार यह कहा और सुना होगा कि–आहार, निद्रा, भय और सन्तानोत्पत्ति–ये मनुष्य और पशुओं में एक समान हैं। मानव को पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों से ऊँचा और बड़ा बनाने वाला केवल धर्म है, उस धर्म को न जानने, न मानने और उसके अनुसार न जीने वाले मनुष्य के लिए – **'धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः'** कहा गया है। वेद की बात करें तो ऋ.1.5.6 में कहा है– "हे मनुष्य! जब तक तू विद्या में बद्ध होकर अच्छी प्रकार परोपकार न करेगा, तब तक तुझको मनुष्यपन और सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति कभी न होगी।" लगता है–**'मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति'** वाली बात यूँ ही नहीं कह दी गई। विद्याविहीन और परोपकार शून्य व्यक्ति को वेद भी मानव नहीं मानता। अरे ! हमारा इससे बड़ा विनाश क्या होगा कि पुण्योदय से प्राप्त मानव तन को पुण्यार्जन (परोपकार) में न लगाकर हम पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहे हैं और फल स्वरूप अपने लिए भोग योनियों के द्वार खोल रहे हैं।

आजकल क्रिकेट बड़ा लोकप्रिय खेल माना जाता है। 140 करोड़ के देश में से मात्र 15–20 युवकों का चयन होना उनके लिए लोकदृष्टि से बहुत बड़ा सौभाग्य है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलने के लिए जो खिलाड़ी चुने जाते हैं, वे उनकी खेल प्रतिभा के आधार पर ही लिये जाते हैं। ***(भ्रष्टाचार व जुगाड़बाजी से कुछ खोटे सिक्के खरे व कुछ खरे सिक्के खोटे बना दिये जाएँ, वो पृथक् है।)*** चयनकर्ता यह देखते हैं कि यह खिलाड़ी बहुत अच्छा खेल रहा है। वे उसके अच्छे खेल से प्रभावित होकर इस आशा के साथ उसे चयनित करते हैं कि यह युवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी इतना ही अच्छा खेलेगा। इस चयन को अपना सौभाग्य समझने वाले युवक–युवति को नहीं भूलना चाहिए कि यह अवसर उसे उसकी खेल–प्रतिभा के कारण मिला है। उसे चयन कर्त्ताओं की आशा पर खरा सिद्ध होने के लिए तथा खेल–दल में अपना स्थान बनाये रखने के लिए वैसा ही अच्छा खेलना है, जिसके आधार पर उसका चयन हुआ था। अगर वह वैसा ही अच्छा खेलेगा तो दल (टीम) में उसका स्थान सुरक्षित हो जाएगा। जब तक अच्छा खेलता रहेगा, स्थान सुरक्षित रहेगा। इसके स्थान यदि पर चयनित खिलाड़ी इस चयन को अपना सौभाग्य मानकर विदेशी धरती पर मौज–मस्ती उड़ाने के अवसर के रूप में लेकर उससे जुड़े कर्त्तव्यों को भूल जाए तो उसे दूसरी बार घर बिठा दिया जाएगा। यह सबकी समझ में आने वाला व्यावहारिक उदाहरण है। ठीक ऐसे ही हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारे पुण्योदय से प्राप्त नर–तन विषय–सेवन व उदर भरण मात्र के लिए नहीं है। वेद ने स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दे दी है–**'तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्'** अर्थात् इस संसार को त्याग–पूर्वक भोगो। परमात्मा ने यह जीवों के भागने के लिये ही बनाया है। परमात्मा तो **'विश्वा जातानि परिता बभूव'** है। उसे इसकी कोई आवश्यकता नहीं। कितना महान आश्चर्य ! कितना विलक्षण व कौतूहल पूर्ण है यह जानना कि यह संसार किसका है ? **भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।** उसके किसी काम का नहीं। जिसके काम (उपभोग) के लिए यह बनाया है उसका यह है नहीं! परमात्मा इसका घोषित स्वामी है, मगर उसके उपयोग के लिए नहीं, उसके किसी काम का नहीं। हम जीवों के उपभोग के लिए है, मगर हमसे कहा है कि इसे त्याग पूर्वक भोगो, लालच मत करो, चिपको मत, अपना मत बनाओ। सोचकर तो देखो कि यह धन किसका है? सोचना क्या, इससे पहले ही मंत्र में तो घोषणा कर दी है–**'ईशावास्यमिदं सर्वम्'**–अर्थात् वह परमात्मा इस सब जड़ चेतन जगत् में बसा हुआ है, व्याप्त है। ईश का एक अर्थ स्वामी भी तो है–यथा–जगदीश तो ध्यान रखो कि यह मानव का चोला मौजमस्ती के लिए नहीं मिला, गुलछर्रे उड़ाने के लिए नहीं मिला। यह आत्म–कल्याण का साधन है, प्रभु प्राप्ति का द्वार है, यू न गँवाओ, कुछ धर्म कमाओ। आत्म कल्याण का द्वार खोलने के लिए प्राप्त इस मानव तन का लौकिक सुख–सुविधा व मान–सम्मान पाने तक सीमित रखोगे तो यह हमारे लिए भोग योनियों के द्वार खोल देगा। भोग योनियों में एक बार फिसल गये तो भगवान जाने कब पुनः यह सौभाग्य मिले और कब वेद ज्ञान की प्राप्ति हो, कब हम उस पर चलने की योग्यता अर्जित कर सकें और कब हमारी यह यात्रा परमात्मा की आनन्दमयी, अमृतमयी गोद में पहुँचकर विराम को प्राप्त हो। –**धियो यो नः प्रचोदयात्।**

गाँव–सूरौता, भरतपुर (राज.)

☞ पृष्ठ 05 का शेष

आर्यसमाज और ...

दिलचस्पी रखती थी। अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जो उससे सहमत नहीं थे। लाला लाजपतराय जी ने अपनी आत्मकथा में उस असहमति के दो कारण लिखे। पहला कारण यह लिखा है कि वे लोग यह विश्वास नहीं रखते थे कि कांग्रेस अंग्रेज़ी राज्य को हटाने में सफल होगी। उनका कहना था कि **"कांग्रेस की नींव कुछ अंग्रेज़ों ने डाली है और अंग्रेज़ अपने देश के हितैषी हैं,** इसलिए, यह कभी सम्भव नहीं कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो। उन लोगों के कांग्रेस में विश्वास न होने का, दूसरा कारण यह था कि उन्हें हिन्दू–मुसलमानों के मेल में विश्वास नहीं था। उनका विचार था कि हिन्दू–मुसलमानों के मेल का उद्योग हिन्दुओं के लिए हानिकारक है।"

लाला जी ने अपने आत्मचरित में लिखा है कि साधारण तौर पर लाहौर के आर्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। धार्मिक **प्रवृत्ति के आर्यसमाजी यह भी समझते थे कि उन्हें अपनी सारी शक्ति वैदिक धर्म के प्रचार में लगानी चाहिए।** नौकरियों और ओहदों के लिए किये गये आन्दोलन में शामिल होना उन्हें व्यर्थ–सा प्रतीत होता था। अधिकतर आर्यसमाजियों की यह सम्मति तब तक कायम रही जब तक महात्मा गांधी ने उसके नेता बन कर उसके कार्यक्रम को ऊँचे स्तर पर नहीं पहुँचाया।

'आर्यसमाज का इतिहास भाग–प्रथम'
पंचम खण्ड : संघर्षगुण (1887–1897)
से साभार

☞ पृष्ठ 06 का शेष

देवी पर बलि

प्यारे भाइयो ! आँखें खोलो, सोचो और समझो, बुद्धि से काम लो और पशु बलि देकर पाप के भागी मत बनो। मन्दिरों के सामने खून की नदियाँ न बहाओ। तुम सोचो तो सही कि जब तुम किसी पशु को मारते हो तो वह कैसा तड़पता है ! पर आपका हृदय पत्थर का हो जाता है। क्या स्वर्ग को जाने की यही रीति है। वेद में लिखा है–

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
(यजुर्वेद)

सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखो। क्या तुम वेद की बात भी नहीं मानते ? आज ही से प्रतिज्ञा करो कि अब कभी ऐसी निर्दयता का काम नहीं करेंगे। देखो ! तुम्हारे पूर्वज ऋषि मुनि तो चीटियों तक को खाना दिया करते थे। तुम भी पशु–पक्षियों को रोटी देते हो। कुछ लोग नदियों की मछलियों को दाना डालते हैं, कुछ लोग गाय को रोटी देते हैं और तुम कैसी सन्तान हो कि ईश्वर के नाम पर पशुओं का रक्त बहाते हो। पशु–बलि घोर हत्या है, घोर अधर्म है, इससे बचो और जो पशु बलि देते हैं उनको भी समझाओ कि वह ऐसा करने से बचे रहें।

ईश्वर आपको सद्बुद्धि दे।

इस ट्रैक्ट के अन्त में एक नोट दिया गया है ***"कृपया इसे पढ़कर दूसरों को दीजिये। आपको जीव रक्षा का पुण्य मिलेगा।"***

{1980 में गंगा प्रसाद उपाध्याय ट्रैक्ट विभाग से प्रकाशित द्वितीय माला का ट्रैक्ट संख्या–28}

पत्र/कविता

जूठा भोजन

महान आध्यात्मिक विभूति तथा श्रीमद्भगवद्गीता के अनन्य भक्त सेठ जयदयाल गोयंदका स्वामी अखंडानंद सरस्वती जी के साथ एक धार्मिक समारोह में भाग ले रहे थे। प्रवचन समाप्त होने के बाद वह कुछ देर विश्राम करने के लिए एक कमरे में पहुँचे। उन्होंने देखा कि एक महात्मा भोजन कर रहे हैं तथा एक महिला उन्हें पंखा झल रही है। महात्मा ने भोजन करने के बाद अपनी पत्तल पर बची जूठी पूड़ियाँ आदि खाद्य पदार्थ उस महिला को देते हुए कहा, 'यह दिव्य प्रसाद है, इसे खाकर तेरा कल्याण हो जाएगा।' गोयंदका जी ने पास बैठे–बैठे यह देखा, तो उनका चेहरा लाल हो उठा। वह बोले, 'स्वामी जी, शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि उच्छिष्ट (जूठा) भोजन खाना–खिलाना पाप है। धर्म ही नहीं, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह गलत है। आप इस भोली–भाली महिला को अपना जूठा खिलाकर धर्म विरुद्ध कृत्य क्यों कर रहे हैं? आपका जूठा भोजन खाने से इसका कल्याण कैसे हो जाएगा? गोयंदका जी ने उस महिला से कहा, 'मइया, तुम्हारा कल्याण बाबाजी का जूठा भोजन करने से नहीं, अपना कर्त्तव्य पालन करने से सत्कर्म करने से होगा।' संत गोयंदका जी की स्पष्टवादिता को देखकर महात्मा हतप्रभ रह गए। उन्होंने संकल्प लिया कि भविष्य में किसी को भी अपना उच्छिष्ट भोजन नहीं देंगे।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

अन्धों में राजा बन बैठे

पानी बिकने लगा यहाँ पर कसर हवा की बाकी है,
भटक – भटक कर ढूँढ रहे हैं गेहूँ के दो दाने लोग।

इतनी हुई प्रगति फूलों को फाँसी दे दी जाती है,
सिरहाने बैठते रहे जो बैठे वे पैताने लोग।

और पिलाओ दूध साँप को डसने पर क्यों रोते हो,
कहना माना नहीं हमारा देते हैं यों ताने लोग।

कुछ मेहमान घरों में आकर गृहपतियों को डाँट रहे,
बढ़ी शिष्टता युग की कितनी कितने हुए सयाने लोग।

जन्मे, पले यहाँ पर, गाली देते अपनी माटी को,
देश जल रहा अपना सारा निकले ईद मनाने लोग।

कैसा है ये चलन वक्त का समझ न कुछ भी आता है,
अन्धों में राजा बन बैठे आज यहाँ कुछ काने लोग।

यह करना है, वह मत करना पागल यह फरमाते हैं,
मुझको समझ निरा बालक कुछ आते हैं समझाने लोग।

सिर धुनने लग गया ज्ञान अब कैसे कोई समझाये,
देते है वक्तव्य 'मनीषी' रोज़–रोज़ बचकाने लोग।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट,
सैक्टर –92, नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335

आयुर्वेद और योग भारतीय संस्कृति और जीवन शैली के अभिन्न अंग

भारत में स्वास्थ्य का विचार केवल रोग–मुक्ति तक समिति नहीं रहा है, बल्कि इसे हमेशा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक की स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है। भारतीय सभ्यता, जो विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है, ने अत्यंत विकसित चिकित्सा एवं जीवनशैली प्रणालियाँ विकसित कीं। इनमें से आयुर्वेद और योग दो महानतम योगदान हैं।

आयुर्वेद, जिसका अर्थ है "जीवन का विज्ञान", विश्व की सबसे प्राचीन व्यवस्थित चिकित्सा पद्धति है। इसकी जड़ें वेदों (विशेषकर अथर्ववेद) में मिलती हैं। यह केवल रोगों के उपचार की पद्धति नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवन जीने की कला भी है। योग, जिसका मूल संस्कृत धातु "युज्" (योजन या मिलन) है, शरीर, मन और आत्मा के सामंजस्य का अभ्यास है। महर्षि पतंजलि ने इसे योगसूत्र में व्यवस्थित रुप दिया।

दोनों प्रणालियाँ परस्पर पूरक हैं। आयुर्वेद व्यक्ति की प्रकृति (प्रकृति) के अनुसार जीवनशैली और आहार निर्धारित करता है, जबकि योग शरीर और मन के अनुशासन द्वारा उस संतुलन को बनाए रखता है। आज जब मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, अवसाद और तनाव जैसी जीवनशैली–जन्य बीमारियाँ बढ़ रही हैं, तब आयुर्वेद और योग स्थायी समाधान प्रदान करते हैं।

भारत की ज्ञान परंपरा में आयुर्वेद और योग का विशेष स्थान है। ये दोनों न केवल स्वास्थ्य और दीर्घायु के साधन हैं, बल्कि शरीर, मन और आत्मा के संतुलन को स्थापित करने वाले दर्शन भी हैं। आयुर्वेद और योग का उद्भव हजारों वर्षों पूर्व हुआ और समय के साथ इनका विकास हुआ। आज ये भारतीय संस्कृति और जीवन–शैली का अभिन्न अंग माने जाते हैं।

ले. डॉ. मोनू, सहायक प्रोफेसर
चुडेला, झुंझुनूं (राजस्थान)
सौजन्य से डॉ. अमित शर्मा फरीदाबाद

****

चीकू

चीकू (Chikoo) एक मीठा, पौष्टिक फल है जिसे अंग्रेज़ी में Sapodilla या Sapota कहते हैं, जो अपनी मीठी, दानेदार बनावट और हल्के भूरे रंग के छिलके के लिए जाना जाता है, और यह विटामिन, फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है, जो पाचन, रोग प्रतिरोधक क्षमता और समग्र स्वास्थ्य में सुधार करता है और इसे सीधे या मिल्कशेक के रूप में खाया जाता है।

स्वास्थ्य लाभ

पोषक तत्वों से भरपूर (Rich in Nutrients): विटामिन (A, B), फाइबर, एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर।

पाचन (Digestion): पाचन में सुधार करता है, कब्ज से राहत देता है।

ऊर्जा (Energy): तुरंत ऊर्जा प्रदान करता है, डिहाइड्रेशन दूर करता है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता (Immunity): प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है।

तनाव कम (Stress Relief): मस्तिष्क को शांत करता है और तनाव कम करता है।

गर्भावस्था (Pregnancy): गर्भवती महिलाओं के लिए फायदेमंद, मतली और उल्टी से राहत देता है।

कैसे खाएँ (How to Eat):

सीधा फल (Directly): छीलकर खाया जा सकता है।

मिल्कशेक (Milkshake): मिल्कशेक और स्मूदी में उपयोग होता है।

मिठाई (Desserts): मिठाइयों में भी इस्तेमाल किया जाता है।

चीकू एक स्वादिष्ट और पौष्टिक फल है जो कई स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है और इसे आसानी से अपनी डाइट में शामिल किया जा सकता है।

****

शोक समाचार

आर्यसमाज, पीपाड़नगर, जिला जोधपुर (राज.) के प्रधान श्री शंकर लाल जी आर्य का आकस्मिक निधन हो गया है। उनके निधन से आर्यजगत् में अपूरणीय क्षति हुई है। वे आर्यसमाज के निष्ठावान सजग प्रहरी थे जो लम्बे समय से वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए व आर्यसमाज की सेवा के लिए सदैव तत्परता से लगे रहे।

हम उनके निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करते हैं। परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति व सद्गति प्रदान करे और अवशिष्ट परिवार को इस दारूण दुःख को सहन करने की शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करे।

मंत्री
आर्यसमाज, पीपाड़नगर
जिला–जोधपुर

☞ पृष्ठ 01 का शेष

उपसभा पं. बंगाल ने मनाया ऋषि ...

डीएवी धादका ने यज्ञ, भजन, प्रवचन के पश्चात् जरूरतमंद लोगों को मिठाई एवं कम्बल प्रदान किए। डीएवी झांझरा के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों ने विधानचंद्र प्रतिवंधी कर्मकेंद्र, खाँदरा के दिव्यांग विद्यार्थियों को आवश्यक खाद्य–सामग्री एवं शिक्षण सामग्री भेंट की। डीएवी मिदनापुर द्वारा जरूरतमंद बच्चों को शिक्षण सामग्री वितरित की गई। डीएवी बैरकपुर में भी राहगीरों एवं गरीब मजदूरों को मिठाई वितरण की गई। डीएवी रानीगंज अमृतकुंज आश्रम में 350 अनाथ बच्चों एवं असहाय लोगों को एक समय का भोजन करवाया। मधुकुण्डा, हल्दिया, आसनसोल, पाण्डवेश्वर, कन्यापुर आसनसोल, पुरुलिया, बांकुडा, निमचा, रुपनारायणपुर, खडगपुर,

शंकरपुर दुर्गापुर, सांथालडिह, बालूर्घाट, दुबराजपुर में स्थित डी.ए.वी. विद्यालयों में भी महर्षि दयानंद सरस्वती जी का जन्मदिवस एवं ऋषि बोधोत्सव दूसरों की सहायता करके मनाया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा, पश्चिम बंगाल की प्रधान श्रीमती पापिया मुखर्जी ने आर्य समाज के सदस्यों और छात्रों का कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उत्साहवर्धन और धन्यवाद किया। शांति पाठ के साथ और प्रसाद वितरण के बाद कार्यक्रम का समापन हुआ।

फरीदाबाद में महर्षि दयानन्द सरस्वती जन्मोत्सव एवं बोधोत्सव

महर्षि दयानन्द सरस्वती के 201वें जन्म दिवस एवं बोधोत्सव के सुअवसर पर आर्य केन्द्रीय सभा (पंजीकृत) फरीदाबाद तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती यज्ञशाला सेवी) की उपस्थिति एवं ब्र. राजेन्द्रार्य, फरीदाबाद की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। आचार्य सतीश सत्यम् एवं आचार्य धर्मवीर सात्विक ने ईश्वर भक्ति एवं शिक्षाप्रद भजन प्रस्तुत किये।

एवं पुस्तकालय, सैक्टर 10, DLF फरीदाबाद द्वारा यजुर्वेद शतकम् यज्ञ सम्पन्न किया गया। यज्ञ ब्रह्मा वैदिक विद्वान् श्री मनुदेव शास्त्री जी एवं डॉ हरिओम् शास्त्री जी ने विधिपूर्वक यज्ञ सम्पादित करवाया। गुरुकुल मंझावली, फरीदाबाद के ब्रह्मचारियों ने यज्ञ में सस्वर वेदपाठ किया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के माननीय प्रधान–स्वामी आर्यवेश जी एवं आर्य प्रतिनिधि सभा, हरियाणा के पूर्व प्रधान मान्य श्री देशबन्धु आर्य जी ने समस्त यजमानों एवं यज्ञ श्रद्धालुओं को अपना आशीर्वाद प्रदान किया।

कार्यक्रम मुख्य पण्डाल में विशिष्ट अतिथि श्री दास राम आर्य (समाज

श्री थारूराम कन्या विद्यालय, बल्लभगढ़ की छात्राओं एवं गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने बोधिरात्रि तथा काशी शास्त्रार्थ विषयक सुन्दर नाटिकाओं के मंचन द्वारा उपस्थित जन समुदाय को भावविभोर कर दिया। आचार्य प्रगति भारती ने नारियों के उत्थान में स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगदान विषयक अपने विचार रखे।

स्वामी आर्यवेश जी ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व विषयक प्रेरणादायक उद्बोधन दिया। सभा प्रधान–श्री प्रेम कुमार मित्तल जी ने समस्त सज्जनों के प्रति आभार व्यक्त किया। शान्ति पाठ एवं जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग में बोर्ड परीक्षा के परीक्षार्थियों के लिए विशेष यज्ञ

हंसराज मॉडल स्कूल, पंजाबी बाग में शैक्षणिक सत्र 2025–26 के कक्षा दसवीं और बारहवीं के विद्यार्थियों के लिए 'आशीर्वाद समारोह' का आयोजन किया गया। प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी सीबीएसई बोर्ड परीक्षाओं के परीक्षार्थियों का मनोबल बढ़ाने तथा उनके उज्ज्वल ने छात्रों के भीतर सकारात्मक ऊर्जा और एकाग्रता का संचार किया।

विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती हीमाल हांडू भट्ट ने विद्यार्थियों को सफलता का मंत्र देते हुए कहा कि "सफलता की कोई लिफ्ट नहीं होती, वहाँ तक पहुँचने के लिए आपको सीढ़ियाँ ही चढ़नी पड़ती हैं।" उन्होंने

भविष्य की कामना के उद्देश्य से इस कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

समारोह का शुभारंभ देवयज्ञ से हुआ। वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान की गईं। इस यज्ञ में विद्यार्थियों ने अपने परिश्रम को सफलता में बदलने के लिए प्रभु से प्रार्थना की। इस आध्यात्मिक वातावरण छात्रों को आगामी परीक्षाओं के लिए आत्मविश्वास बनाए रखने की सलाह दी और जीवन में परिश्रम, निरंतरता और धैर्य के महत्त्व को रेखांकित किया।

प्रधानाचार्या जी के साथ सभी शिक्षक–शिक्षिकाओं ने विद्यार्थियों पर पुष्पवर्षा कर उन्हें सफलता के लिए शुभकामनाएँ दीं।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

हंसराज महिला महाविद्यालय, जालन्धर में मनाया ऋषि जन्मोत्सव

हंसराज महिला महाविद्यालय में महर्षि दयानंद सरस्वती जी की जयंती के अवसर पर विशेष प्रार्थना सभा एवम् यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ में आहुतियां अर्पित कर समाज की सुख–समृद्धि की कामना की गई।

प्राचार्या डॉ. श्रीमती एकता खोसला ने कहा कि महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने 'वेदों की ओर लौटो' का संदेश देकर समाज में जागरूकता और सामाजिक सुधार की ज्योति को जगाया। उन्होंने कहा कि महर्षि दयानंद ने समाज में नारी–शिक्षा का समर्थक बनकर एवं जातिगत भेदभाव का खंडन करके समाज को एक नई दिशा दी। उन्होंने छात्राओं को उनके आदर्शों को अपनाने, सत्य और धर्म के मार्ग पर चलने तथा नैतिक मूल्यों को जीवन में उतारने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा नारी शिक्षा के सर्वोत्तम शिक्षण संस्थान–एच.एम.वी. की प्रत्येक नारी स्त्री शिक्षा हेतु महर्षि के प्रयासों के लिए आभारी है। श्री रवि मैनी ने विचार देते हुए कर्मयोगी बनने का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि हम संस्था के उत्थान के लिए पूर्ण सामर्थ्य से एकजुट होकर कार्य करें।

कु. जाह्नवी और कु. बेनिका ने 'महर्षि दयानंद के विचारों की आधुनिक युग में प्रासंगिकता' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। भजनों के माध्यम से संगीत विभाग द्वारा ऋषि गाथा प्रस्तुत की गई। डॉ. ममता ने कहा कि महर्षि दयानंद सरस्वती का जीवन त्याग, तप और सत्यनिष्ठा का प्रतीक है। हम सभी को उनके विचारों को जीवन में आत्मसात करते हुए आगे बढना चाहिए।

डी.ए.वी. ऐरोली (मुम्बई) में परीक्षार्थियों हेतु शुभकामना समारोह

डी.ए.वी. ऐरोली (मुम्बई) विद्यालय के प्रागंण में कक्षा दसवीं तथा बारहवीं के छात्रों के लिए एक भावुक विदाई समारोह आयोजित किया गया। इसका उद्देश्य उनके उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ देना तथा ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त कराने हेतु श्रद्धा एवं भक्ति भाव से पवित्र हवन कराना था।

कार्यक्रम का प्रारंभ वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ हुआ। श्रीमती कुलदीप शास्त्री ने यज्ञ सम्पन्न करवाते हुए यज्ञ के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती सुमन प्रधान ने विद्यार्थियों को आगामी परीक्षाओं में शांत संयमित एवं निरंतर उत्कृष्ट प्रदर्शन करमे हेतु प्रोत्साहित किया। शिक्षक शिक्षिकाओं ने भी विद्यार्थियों को संबोधित किया। कक्षा दसवीं एवम् बारहवीं के कुछ विद्यार्थियों ने भी अपने अनुभव सांझा किए और शिक्षकों व विद्यालय के प्रति आभार व्यक्त किया।

अंत में छात्रों को वैदिक परंपरा के अनुसार तिलक करते हुए प्रसाद वितरण किया गया और प्रधानाचार्या श्रीमती सुमन प्रधान जी तथा शिक्षक शिक्षिकाओं ने शुभकामना स्वरूप विद्यार्थियों पर फूल बरसाए। यह विदाई समारोह भावपूर्ण क्षणों से परिपूर्ण रहा जिसने वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को भावविभोर कर दिया।

डी.ए.वी. मूनक (पंजाब) में स्वामी दयानंद जयंती पर यज्ञ

बाबू बृष भान डी.ए.वी. सीनियर सेकंडरी पब्लिक स्कूल मूनक (पंजाब) में स्वामी दयानंद जयंती धूमधाम के साथ मनायी गयी। इस अवसर पर एक हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। जिसमें विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री संजीव शर्मा, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने भाग लिया। प्रधानाचार्य महोदय ने आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उन्होंने उस समय समाज में फैली कुरीतिओं, अंधविश्वास, पाखंड इत्यादि से समाज को उभारने के लिए एक श्रेष्ठ समाज की कल्पना करते हुए आर्य समाज की स्थापना कर पूरे विश्व का मार्गदर्शन किया। उन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में भी भरपूर योगदान दिया।

इस अवसर पर वैदिक प्रश्नोत्तरी का आयोजन विद्यालय के पुस्तकालय में किया गया। इसमें स्वामी दयानंद एवं आर्य समाज से सम्बंधित प्रश्न विद्यार्थियों से पूछे गए। उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को स्मृति चिहन देकर उत्साहित किया गया।

अंत में शांति पाठ कर प्रसाद वितरित किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**